Chapter-6

पर्व षष्ठम्

श्री आत्मानंदजी महाराजजीका पद्य साहित्य---

मंगलाचरण---काव्य परिचय–परिभाषा-विभिन्न काव्यविधाये (तालिका)–काव्य रचना प्रक्रिया और काव्यके तत्त्व-रमणीताके सदर्भमे काव्य भेद–

काव्यशैलियाँ---सरस, मधुर, ललित, क्लिष्ट या विदग्ध, उदात्त, व्यग्य–

जैनकाव्य---शैली स्वरूप---आचार, रास, चरित, फागु, सवाद प्रगीतान्तर्गत बारहमासा, मुक्तक–स्तुति, चैत्यवदन, स्तवन सज्झाय गहूली, आरती मगलदीप पर्व त्यौहार गीत गरबा नवमगलदी विनती पद पूजा-काव्यादि-आचार्य प्रवरश्रीकी काव्य रचनाका प्रयोजन-

कोमल-ऋजु-नम्र हृदयतंत्रीके त्रिताल---भरपूर भक्ति, आध्यात्मिक गाभीर्य और उपदेश रहस्योंकी त्रिवेणी---भक्तिरस प्रवाह, दार्शनिक एव सैद्धान्तिक सकेत–विविध काव्योके सदर्भमे उपदेश रहस्य–

कलात्मकता, भावात्मकता और दार्शनिकताके पुट निदर्शन---कलात्मकतान्तर्गत विविध शब्दचित्रो, भाव और रसादिका परिपाक-भावात्मकतान्तर्गत दानादि चार भाव, वात्सल्य भाव, जन्मोल्लासादिका निरूपण–दार्शनिकतान्तर्गत पचपरमेष्ठि, तत्त्वत्रयी, स्याद्वाद, अनेकान्तवाद, दुर्नयोका स्वरूपालेखन, कर्मवाद, आत्मस्वरूप, चौदह राजलोक स्वरूपादिकी प्ररूपणा–

काव्यमें अभिव्यंजना शिल्पः---प्रस्तुत-अप्रस्तुत विधान–

अलंकार---परिभाषा, प्रयोजन, प्रकार (शब्दालकार-अर्थालकार-उभयालकारके भेद-प्रभेदादि सोदाहरण) –

प्रतीक विधान---परिचय–महत्त्व, प्रकार–जैविक, प्राकृतिक पौराणिक, ऐतिहासिक, वैयक्तिक (मानवीय) जीवन व्यवहार एव व्यापाराधारित आदि लौकिक एव लोकोत्तर प्रतीक सोदाहरण)–

बिम्ब विधान---परिचय-नामाभिधान-विशिष्टता-प्रकारान्तर्गत घटना (तथ्य) आधारित, ऐन्द्रिय, सास्कृतिक, व्यावसायिक, व्यावहारिक मनोभावाधारित आदि–

ध्वन्यात्मकता---पारिभाषिक परिचय–प्रकार–लक्षणामूला और अभिधामूला-उसके भेद-प्रभेदादि–

छद विधान---पारिभाषिक परिचय, छदोके आवश्यक तत्त्व–श्रीआत्मानदजीम के पद्यमे छद विधान-विविध छद प्रकारो (वर्णिक-मात्रिक सम-अर्धसम-विषम साधारण-दडक) की सोदाहरण विवक्षा–

शब्दचयन-रसोपलब्धि---परिभाषा-रसनिष्पत्ति-साधारणीकरण-विविध प्रकारके रस (शृगार-भक्तिमाधुर्य, वात्सल्य, शात, करुण, वीर भयानक, विभत्स, अद्‌भूतादि)का श्रीआत्मानदजीम सा के पद्योमे सास्वादन–

रागरागिनियोंसे नवाजित अमर काव्यदेहका वैभविक वर्णन---कवीरश्वरके काव्योमे विविध राग-रागिनियोका आस्वाद–कल्याण, माढ सुहा, खमाज, भोपाली, श्रीराग, भैरवी, मालकौश, सिंध जगला, कसूरी जगला, झिझोटी, जोगिया, रामकली आदि–विभिन्न प्रादेशिक लोक-सगीतकी स्वर लहरियाँ–गरबा, ठुमरी, कव्वाली, गजल, होरी, गुजरी आदि -

निष्कर्ष---

ॐ ह्रीं नमो नाणस्स

पर्व षष्ठम्

-श्री आत्मानंदजी महाराजजीका पद्य साहित्य-

"न स शब्दो न तद्वाच्यं, न सा विद्या न सा कला।
जायते यन्न काव्यांगं; अहो भारः महान कवेः।।"-आचार्य भामह

काव्य परिचय-परिभाषा-

डॉ भगीरथ मिश्रजी काव्यको स्पष्ट करते हुए लिखते है-"काव्य, जीवन और सत्यको संवेद्य बनानेवाली शब्द-रचना है।"[1] अर्थात जीवन जो परिवर्तनशील सत् और 'परमात्मा'-जो शाश्वत सत्य-इन दोनोको अनुभवगम्य और सवेद्य बनानेवाली या अभिव्यक्षीकरण करानेवाली सहज स्वाभाविक रचना जो चित्र या अन्य स्थापत्यादि ललित कलाओसे भिन्न, केवल ललित शब्द रचनाको-काव्य कहा जा सकता है, जिससे सृष्टिकी सुदर एव अद्भूत सवेदना उत्तेजित होकर, कल्पनाके सहारे प्रभाविक रूपमे पाठकको आनद आश्चर्य-करुणा-कृतज्ञता-आदर-मान-आदि भावोद्रेकमे बहा ले जाती है। कभी युगानुरूप-भावानुरूप उसके रूप परिवर्तन होते हैं, लेकिन मूल आत्मा वही बनी रहती है। **"इस दृष्टिसे साहित्य चिर नवीन भी है और चिरंतन भी"** अत सृष्टिके सदृश काव्य भी शाश्वत होते हुए भी नित्य नवीन होता है।

विश्वके सुखदुःख, राग-द्वेष, ईर्ष्या-प्रेम आदि भावानुभावो और नैसर्गिक सौंदर्यादिकी गतिविधियोसे अवाप्त आत्मानदानुभूतिकी अदम्य भावाभिव्यक्ति रूप काव्यको कई विद्वानोने-मम्मट, भामह, प विश्वनाथ, पडितराज जगन्नाथादि सस्कृतादि प्राचीन भाषाविदो और सत तुलसी, देव, केशव, भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी, आ रामचद्र शुक्ल, आ महावीरप्रसाद द्विवेदी, डॉ भगीरथ मिश्र आदि अर्वाचीन हिन्दी आदि पौर्वात्य भाषा मनीषियोने एव कोलरिज, शेली, किट्स, डॉ जोन्सन, ले हण्ट, वर्डसवर्थ आदि पाश्चात्य विद्वद्वर्योने-स्व मत्यानुसार परिभाषित करनेका आयास किया, लेकिन, प्राय कोई भी गुणाढ्य व परिपूर्ण परिभाषा प्रदान नही कर पाया। क्योकि, सामान्यत जैसे गुणादि सौंदर्यालकरणके विना, अनलकृत देहकी शोभा नही, बिना देह निरजन आत्माकी पहचान अत्यन्त दुरूह बनती है और बिना आत्मा न चैतन्य है, न जीवितव्य वैसे ही सभी विद्वानो द्वारा विवरित काव्यकी परिभाषाओमे काव्यकी आत्मा, देह, लालित्य, गुण, दोष, अलकरण, वाह्याभ्यन्तर सौंदर्यादि अनेकविध पहलूओका पृथक् पृथक् विवरण पाया जाता है, लेकिन उसके सर्वाग सपूर्ण व्यक्तित्वको पेश कर सकता है एक मात्र उन सबका समवाय-कोई एकाग नही।

अत निष्कर्ष रूपमे हम यह कह सकते है कि, **मनुष्यकी जिज्ञासा एवं आत्माभिव्यंजनाकी अदम्य इच्छासे मानव जीवनकी विशद व्याख्यान्तर्गत प्राकृतिक सौंदर्यका रसात्मक-नैसर्गिक-हार्दिक निरूपण-जिससे पाठक सांसारिक सर्व परिस्थितियोंसे ऊपर उठकर काव्य घटनाओंको आत्मसात् करके आनंदानुभूति पाता है; जब उसकी मनोदशा ब्रह्म साक्षात्कार किए हुए योगी सदृश हो जाती है-वही काव्य है।**

विभिन्न काव्य विधाये- काव्यके ऐसे विशद लक्षणानुसार दर्शन-विज्ञान, इतिहास-पुराण, काव्यान्तर्गत गीत, कविता, प्रबन्ध, मुक्तक, नाटक, आख्यान, उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध, जीवनचरित्र, पत्रादि विभिन्न सभी साहित्यिक विधाये अपने अपने भावसुमन सजोये स्थितिबद्ध है। इन्हे लक्ष्य ग्रन्थ या उदाहरण ग्रन्थ कहा जा सकता है। जबकि साहित्यालोचना लक्षित काव्यलक्षण, काव्यभेद, गुण दोष, रस-अलकार-छद, बिम्ब योजना या प्रतीक योजनादिको विश्लेषित एव विवेचित करनेवाली रचनाये लक्षण ग्रन्थ मानी जाती है। पूर्वाचार्योके मतानुसार लक्षण ग्रन्थको 'साहित्य' और लक्ष्य ग्रन्थोको 'काव्य' कहा जाता है। लेकिन, साम्प्रत कालमे अब 'साहित्य'को 'literature' का पर्यायवाची माना जाने लगा है, और 'काव्य' शब्द-साहित्यके अंग 'कविता'के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्रजीने काव्य-वाङ्मय-साहित्यके भेद इस तरह किये है-

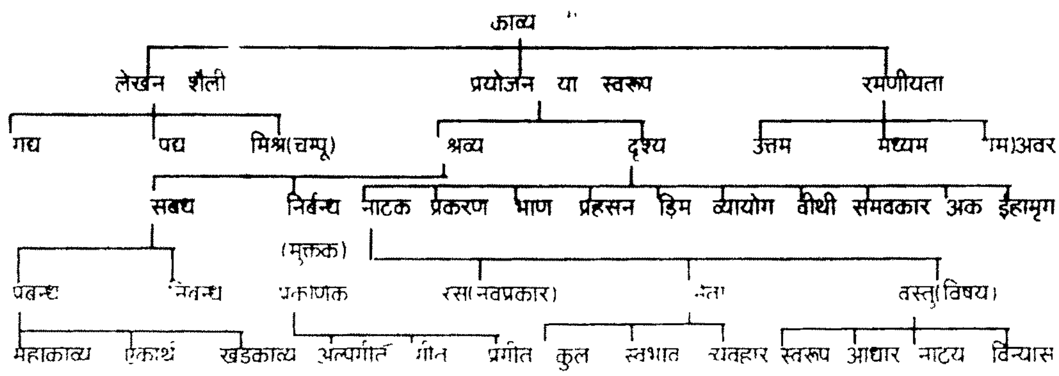

काव्यके इन भेदोपभेद-प्रभदोके अध्ययनोपरान्त यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि पूर्वाचार्योने 'काव्य शब्द-जो वाडमयके लिए प्रयुक्त किया था या जिसका अभिप्रेत 'साहित्य' था-अधुना शैली आलेखनानुसार केवल पद्य रचनाको ही काव्य या कविता कहा जाता है। अब हम देखे कि काव्यके तत्त्व कितने और कैसे है?

<u>*काव्य रचना प्रक्रिया और काव्यके तत्त्व*</u> :- कवि, ब्रह्म सहोदर रसानन्द प्रदाता काव्यानुरूप भावोको अनुभूत करते करते उसके उद्दाम रूपको प्राप्त करता है तब उसका अतस्तल तरगित होता है, अतरमे भावोद्रेकता उमडती है, उसी स्थितिमे वे भाव शब्दोमे ढलने लगते है कल्पना-भाव और शब्दार्थ, बुद्धिकी तुलासे कसे हुए अनायास ही अभिव्यक्ति पा जाते है। तब जो कुछ निष्पन्न होता है वह रचना-कृति ही बन जाती है एक 'काव्यरूप'।

अत हम किसी भी काव्यमे दो तथ्य अवश्य पाते है-भावानुभाव और भावाभिव्यक्ति, जिन्हे साहित्यविदोने भावपक्ष और कलापक्ष माना है। इन्हीको डॉ भगीरथ मिश्रजीने पाच तत्त्वो-शब्द, अर्थ, भाव, कल्पना और बुद्धि–के रूपमे और पाश्चात्य विद्वानोने चार तत्त्वो–राग, कल्पना, बुद्धि और शैली-मे समन्वित करनेका प्रयास किया है।

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानोके इन अभिमतोका सामजस्य हम कुछ इस तरह कर सकते है–'शब्द' और 'अर्थ'-इस युगलसे भावक द्वारा अनुभूत भावोकी अभिव्यक्ति की जाती है। शब्दार्थके बिना अनेक भावोका आलकारिक, चमत्कार-निष्पन्न, निरूपण असभ है। शब्दसे ही अर्थ या भावार्थका द्योतन होता है। शब्दोके (वर्णोके) लघु-गुरु रूपसे छदोकी सृष्टि होती है तो गति-प्रवाह-लय (नाद सौदर्य) आदिकी कलात्मकता शब्दाधीन ही होती है। शब्दसे ही परुषा, कोमला और उपनागरी वृत्तियोका निर्माण होता है जबकि अभिधा, लक्षणा और व्यजनादि शब्द-शक्तियोका प्रकटीकरण 'अर्थ' पर ही निर्भर है। 'भाव' और कल्पना'की सक्षम अभिव्यक्तिको प्रस्फुटन करनेवाला शब्दार्थ ही तो होता है। अत भारतीय विद्वानोके शब्द' और 'अर्थ' तत्त्वोका पाश्चात्य विद्वानोके 'शैली' तत्त्वमे समवाय हो जाता है **"अभिव्यक्तिकी कुशल शक्ति ही कला है।" -श्री मैथिली शरण गुप्तजी।**

इसी तरह 'भाव'तत्त्वको पाश्चात्योके 'राग'तत्त्वमे समन्वित किया जा सकता है। 'राग' अर्थात् प्रीति-अनुराग- जिसके कारण जीवन सुख-दुःखकी अनुभूति युक्त बनता है। **"हमारे संस्कार रूपमें प्रतिष्ठित मनोवेग पुनस्मृत और अनुभूत होकर जब प्रकट होते हैं तब वे 'भाव' बनते है। भावकी तीव्रता ही अभिव्यक्तिको उद्दीप्त करती है। भावोंमें प्रेरकता और सक्रामकता रहती है. . अतएव काव्यके क्षेत्रमें भावका बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।"**"कविकी कल्पनाका प्रेरक और छद-लयादिके स्वरूपका विधायक 'भाव'ही सवेदना जागृत करता है। **"भावही मूलत शब्द-प्रवाहका उत्स है। ..अतः 'भाव'काव्यका व्यापक तत्त्व है।"**

कविकी सौंदर्य-प्रियता और प्रकृतिचित्रणकी सूक्ष्मतम अभिव्यजनाका परिचायक 'कल्पना' तत्त्व है, जिससे अनुभूतिकी जटिलता और सत्यके प्रत्यक्षीकरणमे उद्रेकका आविर्भाव शक्य बनता है। 'कल्पना'ही कविकी

ज्ञान-प्रतिभाका तादृश चितार है। 'कल्पना'से हा काव्यमे अनूठा लाघव, **रमणीयता**, रोचकता, चमत्कार **असाधारणत्वादि प्रदर्शित होता है।**

'शब्दार्थ' रूप कलापक्ष और 'भाव-कल्पना' रूप भावपक्षका यथायोग्य सामजस्यपूर्ण नियोजन 'बुद्धि'से होता है, जो **काव्यको प्रभावशाली एव औचित्यपूर्ण रूपमे स्थिर** करता है। **कविकी सूक्ष्म सवेदना और उर्वर कोमल कल्पनासे भावोकी विलक्षणता संपादित होती है।**

अत **'भावपक्ष' काव्यकी** आत्मा **और 'कलापक्ष' उसका शरीर** माना जा **सकता है। दोनो अन्योन्याश्रय** सबधित होनेके कारण एक दूसरेको यथोचित-यथावसर प्रबल बनाते है दोनोकी समन्विति काव्यको श्रेष्ठता बक्षती है। भाव पक्षान्तर्गत वस्तु निरूपण चरित्रचित्रण, प्रकृतिचित्रण नाद सौदर्य, जीवन-दर्शन, युग-सदेश रस-नियोजनादिका विश्लेषण और कलापक्षान्तर्गत अलकार-विधान छद विधान सगीतात्मकता (गेयता) आदिकी मीमासा की जाती है।

रमणीयताके सदर्भमे ..व्यभेद–सत्यका अनुसधान करके तात्त्विक नव्य भावोकी सप्रेषणीयता तथा मानवमनको सस्कारित करके सास्कृतिक प्रगति एव वैचारिक क्रान्ति प्रदाता काव्यका 'भावपक्ष' और काव्यके वास्तविक सत्यको सुदर, आकर्षक और चमत्कारपूर्ण विलक्षण सूक्ष्म एव प्रभावपूर्ण ढगसे वैचित्र्य और वैविध्यताके साथ छदोबद्ध या मुक्त रूपमे लयबद्ध-अप्रस्तुतादि योजनाओ द्वारा प्रस्तुतकर्ता काव्यका 'कलापक्ष'–दोनोकी अभिव्यक्तिका एक मात्र साधन-प्रमुख अग-होती है भाषा, जो कविकी सवेद्य मनोभावाभिव्यक्तिका पाठक या श्रोताको रसास्वादन कराती है। भाषा होती है सार्थक शब्द प्रयोगोका यथोचित, यथावसर, यथेच्छ विधान या ग्रथन।

इन शब्द प्रयोगो द्वारा अर्थाभिव्यक्तिके वैचित्र्यसे शब्दशक्तिके तीन भेद होते है–अभिधा, लक्षणा व्यजना–जिसे काव्याभ्यासियोंने 'वाचक' शब्द प्रयोगसे वाच्यार्थकी ज्ञापक शक्ति 'अभिधा', 'लक्षक' शब्द प्रयोगसे वाच्यार्थको छोडकर उससे सम्बद्ध अर्थ-लक्ष्यार्थकी ग्राहक शक्ति 'लक्षणा', और इन दोनोके अतिरिक्त किसी विलक्षण अर्थकी अवबोधक शक्तिको 'व्यजना'के रूपमे वर्गीकृत किया है। इनके कारण काव्यके- उत्तम, मध्यम, अवर-तीन भेद माने गये है। जिसमे व्यग्यार्थ (ध्वनि)की प्रधानतायुक्त काव्य 'उत्तम', वाच्यार्थ और व्यग्यार्थ-दोनोकी समानता या गुणीभूत व्यग्य काव्य 'मध्यम' और केवल वाच्यार्थ निष्पन्न काव्यको 'अवर' (अधम या चित्रकाव्य) कहा जाता है।

काव्य शैलियाँ:– नैसर्गिक रूपमे प्राप्त भाव विचार और कल्पनाको सार्थक शब्द समूहोके व्यवस्थित एव उपयुक्त रीतिसे प्रभावोत्पादक ढंगसे प्रयुक्त करनेका कौशल ही शैली है। श्री श्यामसुदरदासजीने 'शैली'को स्पष्ट करते हुए लिखा है- **"किसी कवि या लेखककी शब्द योजना, वाक्यांश प्रयोग, वाक्य बनावट और उसकी ध्वनि-आदिका नाम ही 'शैली' है।"**[5]

प्राचीन सस्कृत साहित्यमे शैलीका विवेचन अलकारवादियो द्वारा रीतिके रूपमे हुआ। इनमे प्रमुखत आचार्य वामनने तो 'रीति' ही काव्यकी आत्मा मानी है। रीतिके विवेचनान्तर्गत हम देख सकते है कि शब्दके तीन गुण होते है, जिससे तीन वृत्तियॉ निष्पन्न होती है इन्ही तीन गुणाधारित वाक्य रचनाकी रीतियॉ भी तीन मानी गई है। साथ ही साथ काव्यमें रसकी प्रधानता होती है और गुण काव्यका आभ्यन्तर धर्म माना जाता है, क्योकि प्राय बिना गुण रसका अस्तित्व ही नही हो सकता।

अत हम कह सकते है कि समास रहित या अल्प समासवाली सुकुमार शब्दावली युक्त माधुर्य गुण निष्पन्न मधुरा वृत्तिवाली शैली "वैदर्भी" होती है जिसमे शृगार करुण शात रस पलते है तो दीर्घसमास, ओज और कान्ति गुणयुक्त अक्षराडम्बरवाली परुषावृत्ति एव सयुक्ताक्षरोवाली "गौडीशैली"की रचनाओमे वीर बिभत्स-रौद्रादि रसोका अनुभव मिलता है जबकि स्वल्प समास, सुकुमाल शब्दावली प्रधान, शिथिल पद सगठनवाली, प्रसाद गुण सिद्ध और प्रौढावृत्ति युक्त "पाचाली शैली" सर्व रसोको परिपुष्ट करती है। कोमलपद, उचित समास युक्त विशेषण प्रधान वर्णनवाली जो शैली है उसे 'लाटी रीति' कहते है। विशेषत वैदर्भी

और गौडी शैली शब्द-वर्णोसे सम्बन्धित है, तो पाचाली शैली अर्थाधारित रूपोमे पायी जाती है।

लेकिन आधुनिक कालमे विशेष रूपसे अवलोकन करते हुए हमे ज्ञात होता है कि हिन्दी भाषान्तर्गत उपरोक्त विवरणके अतिरिक्त शैलीका निश्चय वर्ण्यविषय, चरित्र चित्रण, परिस्थिति भाव उद्देश्यादि द्वारा भी निश्चित किया जाता है। हिन्दी काव्यान्तर्गत हम शैलीको सरस, मधुर, । विदग्ध, उदात्त तथा व्यग्यादि-वर्गोमे वर्गीकृत कर सकते है।

सरस शैली—सरल, एव सर्वजन सुगम, प्रसाद गुण सम्पन्न, भावानुसार शब्दावलिमे रसका निरूपण करनेवाली रमणीय शैली-'सरस शैली' कही जाती है।

मधुरशैली—मधुर समासमय शब्दो द्वारा उपनागरिका वृत्ति प्रयाससे सुकुमार कोमल भावोका वर्णन किया गया हो और कर्कश एव भयानक प्रसग वर्णन न हो-वह मधुर शैली' कही जाती है।

ललित शैली—शब्दोके कलात्मक प्रयोग द्वारा कल्पनाके रगोमे चित्रात्मकता वर्णनकी सूक्ष्म सजीवता, उक्ति चमत्कार, अलकारितादिवाले काव्यमे 'ललित शैली' मानी जाती है।

क्लिष्ट या विदग्ध शैली—जिस शैलीमे शब्दोका साकेतिक लाक्षणिक, प्रतीकात्मक प्रयोग हो, गूढ अर्थ या क्लिष्ट कल्पनाकी प्रचुरता हो और जिसका भाव बिना व्याख्या अथवा टीकाके स्पष्ट न हो वह विदग्ध शैली कही जाती है।

उदात्त शैली—ओज गुण सम्पन्न वीरता-उत्साह-भयादि भावोकी प्रेरक, दीर्घ समास एव पदयुक्त सयुक्ताक्षर युक्त उत्तेजक शैलीको 'उदात्त शैली' नामसे पहचाना जाता है।

व्यंग्य शैली—वाक्यमे शब्द प्रयोग तीखे प्रभावको व्यक्त करते है और उक्तिकी वक्रतासे कविका कथन श्रोता या पाठकके हृदयमे चूभ जाता है। अत इसमे वाच्यार्थकी अपेक्षा व्यग्यार्थ ही प्रधान होता है। इस तरह वक्रोक्ति रूपमे प्रस्तुत काव्य व्यग्य शैलीका माना जाता है।

शब्द और अर्थसे सम्बन्धित स्थूल मानदडाधारित इन शैलियोके इस वर्गीकरण अन्तर्गत हम महाकवि श्री आत्मानदजीम के साहित्यको विश्लेषित करनेकी चेष्टा करते है। कविराज श्रीआत्मानदजीके पद्य साहित्यमे हमे उपरोक्त सभी शैलियोका स्वल्पाधिक रूपमे आनद प्राप्त हो सकता है। यथा-**सरस शैली**—

"कारण निमित्त उजागर मेरो, सरण गहयो अब तेरो रे।
भगत वछल प्रभु जगत उजेरो, तिमिर मोह हरो मेरो रे मनमोहन स्वामी।
भगति तिहारी, मुज मन जागी, कुमति पंथ दियो त्यागी रे।
आतम ज्ञान भानमति जागी, मुझ तुझ अंतर भागी रे....मनमोहन स्वामी।" [८]

मोहकी मायाजालमे फसे आत्माकी मलिनताका वर्णन सरल-सहज, सरस-शैलीमे करते हुए गाते है-

"मात तात तिरिया सुत भाई, तन धन तरुण नवीनो।
ए सब मोह जालकी माया, इन सग भयो है मलीनो॥" [९]

मधुर शैली—श्री सिद्धाचल तीर्थकी स्पर्शना करनेसे पुण्याकुरका प्रकटीकरण-पाप समूहका पृथक्त्व एव भवसमुद्र पार करके आत्मानद प्राप्तिका सुदर सगीतमयी सुकुमार शब्दावलिमे वर्णन, दृष्टव्य है-

"अरे कांइ नाभिनंदन चंद, अरे कांइ छे'री पाल जिन चंद।
अरे कांइ दूर होवे अघवृंद, अरे काइ प्रगटे नयनानंद॥
व्हाला भवि जइया विमलगिरि भेटवा।
अरे काइ मोटा पुण्य अकुर, अरे काइ चिता गइ सब दूर।
अरे काइ कुमत कदाग्रह चूर, अरे काइ आव्या नाथ हजूर व्हाला भवि-
अरे काइ मुझने मती तुं विसार, अरे काइ धरम भरम सब छार।
अरे कांइ आतम आनंदकार, अरे काइ भवसागर पाया पार....व्हाला भवि..." [१०]

कल्पतरु श्री शीतलनाथ जिनेश्वरसे मनवाछित-भवपार-(मोक्ष)-पानेकी-कामना करते हुए याचते हैं-

"शीतल जिनवर ता- हो, तोरी सरण गही है

वदन कमल सम जग मन मोहे, भांजत सकल विकार हो तोरी सरण गही है....

कल्पतरु तूं वंछित पूरे, चूरे करम करार....हो तोरी सरण गही है....

तुमरे चरणकी सरण लइ है, कर भवोदधि से पार....हो तोरी सरण गही है...

आतम आनंद चिद्घन मूरती, काम्त फल दातार....हो तोरी सरण ग्रही है...."[11]

कवि-प्रवर श्रीआत्मानदजीने कल्पनाके रगोके सहारे, सजीव चित्रमय सूक्ष्मतासे, उक्ति वैचित्र्य द्वारा, अनुप्रास अलकारका ग्रथन करते हुए आकाशमे बादल समान मदमाते यौवनका वर्णन **ललितशैली**मे पेश किया है जो उपदेशात्मक होते हुए भी सानदाश्चर्य प्रदाता है

"अधिक रसीले झीले सुखमें उमग कीले आतम सरूप ढीले राजत जीहानमें,

कमलवदन दीत सुंदर रदन सीत, कनकवरण नीत मोहे मद पानमे:

रंग बदरंग लाल मुगता कनक जाल, पाग धरी भाल लाल राचे ताल तानमें,

छीनक तमासा करी सुपने सी रीत धरी, ऐसे वीरलाय जैसे वादर विहानमे ।" [12]

क्लिष्ट(विदग्ध)शैली–जैन दर्शनानुसार ध्यानके चार भेद माने गए है, आर्तध्यान-रौद्रध्यान (दोनो अशुभध्यान है) धर्मध्यान-शुक्लध्यान (दोनो शुभध्यान है)-इनमे से चतुर्थ शुक्लध्यानके चार प्रभेदोमे स्थित आत्मा कौनसी लेश्या (अध्यवसाय या भाव)मे वर्तती है उसे साकेतिक रूपमे अत्यन्त सक्षेपमे निरूपित किया दोहा, 'विदग्धशैली'का उत्तम नमूना है-

"प्रथम भेद दो शुक्लमें, तीजा परम वखान।

लेखातीत चतुर्थ है, एही जिनमत वान।" [13]

जबकि इन्ही ध्यान स्वरूप वर्णनान्तर्गत साधक, सतके परिसर, परिवेश व परिणामका प्रतीकात्मक वर्णन-

"संत जन वणिग विरतमय महा पंत पत्तन अनूप तिहां मोख रूप जानीये,

अवधि तारणहार समक बंधन डार ग्यान है करणधार, छिदर मिटानीये,

तप वात वेग कर चलत विरागपंथ संकाकी तरंग न ते खोभ नही मानीये,

सील अंग रतन जतन करी सौदाभरी अवाबाध लाभ धरी मोख सौध ठानीये ।" [14]

उदात्त शैली– देवाधिदेव श्री तीर्थकर भगवतकी उमडते भावोल्लाससे झूमते देवलोकके देवताओकी उत्साहयुक्त भक्तिका ओजगुण युक्त उदात्तशैलीमे कविराज श्री आत्मानदजी म सा ने राग-खमाजमे जो वर्णन किया है वडा ही प्रभावशाली बन पडा है-

"नाचत शक्र शक्री, हेरी माई नाचत शक्र शक्री

छंछंछंछं छननननन नाचत शक्र शक्री....हेरी माई...

श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि बहु बनी ठनी, इंद्र इंद्राणी करे नाटक संगीत धुनी।

जय जय जिन जग-तिमिर भानु तूं, चरण घुंघरी छंछननननन ॥.. नाचत .."[15]

जबकि इसी-उदात-शैलीमे परमात्मा-सिद्धात्मा-के समासबद्ध स्वरूप वर्णनमे भी अनूठे चमकार दर्शित होते है

"त्रिभागोन ही चरम देहसे, ज्ञानमय आतम केरा

निरावरण ही ज्योति, निराबाधावगाहन विभु तेरा।

सकल कर्म-मल दूर करीने, पूरण अड़-गुण ले मगी।

स्व द्रव्य ही क्षेत्र-काल-स्वभावें, स्व-पर सत्ता गिन ज्ञानी।

निज गुण ही अनंते-शक्ति-व्यक्ति कर मन मानी।।

निज आतम रूपे, अज-अमल-अखंडित सुख खानी।। . ."[16]

व्यंग्य शैली–चटकीली और चुभीती एव प्रखर वानीमे, मोह मायामे मदमस्त आत्माको चेतावनीके सूरमे उसके फल स्वरूपको प्रभावोत्पादक रूपसे वर्णित किया है-

"नीले मधु पीके टीके शीखंड सुगंड लीके करत कलोल जीके नागबेर चाख रे,
अतर कपूर पूर अगर तगर भूर मृगमद घनसार भरे घरे खाख रे।
सेव आरू आंब दारु पीसता बदाम चारु आतम नागरा **पेरा चखत सुदाख रे,**
मृदु तन नार फास, सजाके जंजीर पास पकरी नरकवास अंत भई खाख रे।।[17]

इस प्रकार **महाकविराज** श्री आत्मानदजी म के पद्य **साहित्यके अवलोकनसे** ज्ञात **होता है** कि इन्होंने प्रभु परमात्माके प्रति सर्वस्व समर्पण एव आत्माभिव्यक्तिके स्तवन पद, सज्झाय, पूजादिमे विशेषत सरस मधुर एव ललित शैलीका प्रयोग किया है, तो मुक्तकादिमे मधुर ललित विदग्ध एव उदात्त शैलीको अपनाया है। कही कही व्यग्य शैलीका रसपान भी झलक जाता है।

जैन काव्य शैली स्वरूप--यद्यपि मानव हृदय एकसा होता है तथापि प्रत्येक जातिके साहित्यकी निजी-वैयक्तिक विशिष्टता होती है। जातिके विकस्वर भाव स्वरूप उनके विकासके साथ साथ साहित्यमे झलकते रहते है, जो कभी कभी इतने प्रभाविक होते है कि उससे समाज जीवनमे स्थायी परिवर्तन लाया जा सकता है। जैन कवियोके साहित्यकी रचना शैलीकी अपनी विशिष्टताये है, जो अन्य धर्म-मतावलम्बियोके भक्ति साहित्यसे निराली ही है। इनके विभिन्न शैली रूपोको हम इस प्रकारसे वर्गीकृत कर सकते है-

आचार--जिनमे घटनाओके स्थान पर उपदेशात्मकता प्रधान होती है। *रास*--आचार्य परशुराम चतुर्वेदीने अपने लेख 'भक्तिकालकी पूर्वपीठिका'के अतर्गत लिखा है- **"जैन कवियोंने लोकप्रचलित शृंगार-परक आख्यानो तथा काम-कथाओंका उपयोग, शील-वैराग्य भावनाके प्रचारमें किया"** [18] अत वही पौराणिक पात्रोके जीवनालेखनका प्रयास इस नव्य काव्यरूप 'रास'के अतर्गत किया गया। *चरित काव्य*--इनमे शलाका पुरुषो, महापुरुषो, महासतियो आदिके जीवन चरित्रोकी प्ररूपणा हुई है जिससे उत्तम एव उदात्त जीवन शैली और सस्कृत-सस्कार-व्यवहारादिके सुधार तथा उर्ध्वीकरणकी प्रेरणाये-सदेश मिलते है। *फागुकाव्य*--ये 'होरी' काव्योका रूप माना जाता है। इनमे होरीकी स्वच्छद मस्तीको परिवर्तीत करके विविध आध्यात्मिक भावोकी सृष्टि की जाती है *चर्चरी*--विशिष्ट जीवन प्रसगोका आलेखन किया जाता है *सवाद*--जिसमे प्रमुखत गुरु शिष्यादि सवाद मिलते है, जो तत्त्वोपदेश रूप होता है। *प्रगीतान्तर्गत बारहमासा*--इनमे शृगारिकताका स्थान नीति या अध्यात्मने लिया है। *मुक्तक*--जो प्रगीतकाव्यका ही एक रूप माना जाता है और जिसमे सगीतात्मकता विशेष रूपमे पायी जाती है। इनमे भगवद् भक्तिके लिए रचे गए स्तुति, चैत्यवदन, स्तवन, सज्झाय, गहुली, आरती, मगलदीप, पर्व-त्यौहार गीत, तीर्थ वदनावलि, विनती, पद, पूजादि अनेक विभिन्न रूप पाये जाते है। इनमे साकार रूप अरिहत एव निराकार रूप सिद्धकी त्रिविध, अष्टविध, सत्रह-इक्कीस प्रकारसे की जाती पूजाभक्ति-भावोका स्वरूप, बीस स्थानकादि विविध तपादिका स्वरूप, श्री अरिहतादि शलाका पुरुषादिके गुणगान कल्याणक महोत्सवादि भक्ति स्वरूप, तीर्थोके वर्णनादिका जो अत्यन्त चमत्कारिक, आलकारिक, वैभवपूर्ण आलेखन विविध छद, लय एव राग-रागिनियोमे हुआ है। महाकवि श्री आत्मानदजीके पद्य साहित्यमे भी इन रूपोके दर्शन होते है यथा- 'उपदेश बावनी' 'ध्यान स्वरूप' आचार काव्यके रूपमे 'चतुर्विंशति जिन स्तवन' एव अन्य तीर्थकरोके स्तवन चरित काव्यके रूपमे 'आत्मविलास स्तवनावलि'के कुछ पद फागुकाव्यके रूपमे स्नात्रपूजा-चर्चरी रूपमे 'श्री नेमिनाथ जिन स्तवन' बारहमासाके रूपमे एव अन्य मुक्तक रूपोके अन्य फुटकर रचनाओमे रसास्वादन मिलता है।

उपरोक्त वाङ्मय विषयक विवरणके साथ साथ स्मरणीय है कि विवक्षित साहित्य रचनाये भी ससार विरक्त एव आत्माभिमुख, परमतत्त्व-देवाधिदेवकी अचिन्त्य अलौकिक उत्कृष्ट भक्ति भाव-प्रणिधानमे- तन्मय एव तद्रुप अनूठे आत्मानदमे निरतर अवगाहनकर्ता, जैनधर्मस्तभ श्री आत्मानदजी नामाभिधान जैनाचार्य द्वारा केवल 'स्वान्त सुखाय-जगजन हिताय'की भावनायुक्त उमडते हुए भावोद्रेकके साथ स्वत ही फूट पडी थी, जिसमे परमपद (मोक्ष) प्राप्तिके सूक्ष्मातिसूक्ष्म एव विशद मार्ग प्रवाहोका मार्गदर्शन विशेष रूपसे प्राप्त होता

है।

इनके काव्यमें भावात्मक एव अनुभूतिकी प्रवणताके साथ साथ सहजता और सरलताकी ओर उन्मुख सत्यके प्रचार-प्रसारके लिए सत्यका विवेचन एव निरूपण हुआ है। अत इनका मूल लक्ष्य न काव्य-सौष्ठवकी ओर था न काव्य परिमार्जन या परिष्कारकी ओर. प्रत्युत इनके काव्यमे अतर्भावोके प्रकटीकरण एव स्पष्टीकरण करते करते अलकार निरूपण या प्रतीक योजनाये और बिम्ब विधान, कल्पना प्रचुर व्यजक भाव (ध्वन्यात्मकता) और छदोबद्धता एव गेयता स्वत ही आ गए हैं।

इनकी रचनाका प्रयोजन न आचार्य वामनकी भाँति "काव्य सद्दृष्टाऽदृष्टार्थ प्रीति-कीर्ति हेतुत्वात्" है, न आचार्य मम्मट सदृश-"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतर क्षतये, सद्य. परिनिवृत्तय कान्ता सम्मिततयोपदेश युजे।" लेकिन प्राय यह कह सकते है कि आचार्य भामहके समान-"धर्मार्थ काममोक्षेषु वैचक्षण्य कलासु च" है। अर्थात इनकी रचनाओमे परमात्व तत्त्वकी स्वानुभूति और परमपद प्राप्तिके साथ साथ लोकमगल भावनाकारी उपदेशोकी प्रमुखता है।

इनके काव्योकी अपनी विशेषतायें है-जो जैनधर्मके विशिष्ट आदर्श-स्याद्वाद और अनेकान्तवादकी अक्षुण्ण एव अद्भूत रसधारमे उल्लास-विषाद, नीडरता-भवभीरुता, रहस्यमय गूढता एव सरलता, नित्यानित्यता अथवा क्षणिकता और सनातनतादि विभिन्न विरोधाभासी भावोको एक साथ अपनेमे समेटे हुए प्रवाहित होती रही है। अत इन रचनाओका विशेषाधिक मूल्य सामाजिक, धार्मिक और सास्कृतिक दृष्टिसे प्रेक्षणीय है। डॉ तारकनाथ वाली अपने 'निर्गुण भक्तिकाव्य' लेखान्तर्गत इसी विचारधाराको प्ररूपित करते हुए लिखते है- "साहित्यकी जो लौकिक सीमायें तथा काव्यशास्त्रीय एवं भाषा वैज्ञानिक स्वीकृतियाँ है, उनमें इस काव्यधाराको नहीं बाँधा जा सकता, परंतु पारमार्थिक, अलौकिक एवं दार्शनिक जगतकी झाँकियोंको प्रस्तुत करनेवाले इस साहित्यका अपना महत्व है।"[9]

कोमल-ऋजु-नम्र हृदयतंत्रीके त्रिताल—

नैसर्गिक कवित्व शक्तिके स्वामी कविराज श्री आत्मानन्दजीकी हृदयतत्रीके त्रितालमे सुनाई देती है कोमलता, नाचती है ऋजुता, दिखाई देती है नम्रता। लयबद्ध नादसौदर्यकी झकृतिसे झलकते है निजात्माको उदबोधन और समाजको सबोधन (मार्गदर्शन)। परमात्माके कीर्तन, वदन, स्मरणादि रूपोमे की गई भक्तिमे छलकती है कोमल-सरल-नम्र अतरभावोंकी अभिव्यक्तियाँ।

'कुसुमादपि कोमलानि, व्रजादपि कठोराणि'-उक्ति साधुजीवनकी शोभा है। 'पर'(अन्य) एव परमात्माके प्रति अत्यन्त कोमलता और 'स्व' एव ससारके प्रति कठोरता यह अणगारके आभूषण है। परमात्माका जीवन स्वय वीतरागताको सजोये हुए जीवमात्रके प्रति कल्याणकारी होता है। यही कारण है कि जिनेश्वर प्ररूपित जैनदर्शनमे 'पर'-अन्य सर्व जीवोके प्रति कोमल-करुणा भाव धारण करते हुए 'स्व'के प्रति-निजात्माके अवगुण, कर्मकलकोके प्रति-कठोर अर्थात आत्मदमन, इन्द्रियदमन, आशा-अपेक्षाओका दमन करनेके साथ ही साथ ससार और सासारिक-भौतिक पौद्गलिक भावनाओके प्रति कठोरताका (इनके त्याग करनेका) आह्लेक जगाया गया है। जिससे विश्व व्यवहारके अनेक भावो और कार्यकलापोका शिक्षण-सस्कार-सस्कृति आदिका विकास और वृद्धि शक्य बन सके। श्री आचार्यदेवने अपने काव्यमे इन्ही भावोको साकार करनेके लिए अत्यन्त ऋजुताके साथ अर्हद् भक्तिभावमे मग्न बनकर गाया है-

"अर्हत पदको भजके चेतन, निज स्वरूपमें रम रहियें।
तुम अकल स्वरूपी, छोड़के परगुण, निज मना लहीये।
आतम घनमें खोज पियारे, बाहिर भरम ते ना रहियें।
गड़बड़ सब त्यागी, पासके चरणकमलमे जा रहीयें।।" [10]

ऐसे ही परमात्म स्वरूप दर्शनसे प्रसन्नता व्यक्त करते हुए झूम उठे हैं-

"प्रभु अविचल ज्योति रे, निज गुण रंग रली।

प्रभु त्रिभुवन चदा रे, तामस दूर टली। जग शांति के दातार, अघ सब दूर टली।"[21]

भव्य जनोको हितशिक्षा देनेके लिए कैसी कोमल-कर्णप्रिय-पथ्यवाणीसे उद्बोधन किया है।

"जलके विमल गुण, दलके करम फल, **हलके अटल धुन, अघ जोर कसीए;**
टलके सुधार धार, गलके मलिन भार, **छलके न पुरतान, मोक्ष नार रसीए।**
चलके सुज्ञान मग, छलके समर ठग, मलके भरम जग, जालमें न फसीए।
थलके वसन हार, खलके लगन टार, टलके कनकनार, आतम दरसीए।।" [22]

कदम कदम पर प्रकट होनेवाली नम्रताका तो इनकी अधिकतर रचनाओमे दर्शन होते है लेकिन विशेषत दास्य भावसे भवपार उतरनेके लिए याचना रूप ... ... है वे अधिक हृदयस्पर्शी बन पडे है-यथा-**"श्री सुपास मुझ विनती, अब मानो दीन दयालजी।**
तरण तारण तुम बिरुद छे, भगत वछल किरपालजी।
.... किरपा करो मुझ भणी, थाये पूरण ब्रह्म प्रकासजी।"... [23]

बजते हुए अनहद नादके 'तुही तुही' के तार-तानमे एसन्नानद फूट पडा है-

"आतमराम आनंद पुरण, तुं मुज काज सुधार रे
अनहद नाद बजे घट अंतर, तुंही तुंही तान उच्चार रे।" [24]

निर्मल आत्मदशाके अनुभवको नैसर्गिक और सहज फिर भी मार्मिक शब्दावलिमे परमात्माके सम्मुख व्यक्त करते है- **"मनरी बातां दाखोजी, म्हाराराज हो, ऋषभजी थाने**
मनरी बातां दाखाजी म्हारा राज.. ..
अनुभव रंग रंगीला समता संगीजी म्हारा राज हो,
आतम ताजा अनुभव राजा रंगीजी म्हारा राज" [25]

यह सपूर्ण काव्य ही अनूठी भाव व्यजना, सुरीली गेयता और आतमराज रग रेलियोमे झूलता-बहता भाविक श्रोताको डोलायमान कर देता है।

इसप्रकार हम देख सकते हैं कि तार्किक-शिरोमणि,-'न्यायाम्भोनिधि' बिरुदधारी और स्वसमय प्रभावसे प्रभावित खडन-मडनात्मक ... एव निश्चयात्मक वाग्-विलासके स्वामी सूरिराजके काव्यमे परमात्मा प्रति सर्व समर्पित न्यौछावरी और उदात्त जिदादिलीके साथ पर्युपासना करनेवाले कोमल-ऋजु-विनम्र भक्त हृदय कवि योग्य अतर ...के समीचीन स्रोत स्थान स्थान पर श्रोताजनोको निजानदजी सृष्टिकी मस्तीमे रमानेवाले बन पडे है जो काव्यके चारु-सौदर्यके परिचायक है।

भरपूर भक्ति, आध्यात्मिक गांभीर्य और उपदेश रहस्योंकी त्रिवेणीः—मानव मात्रकी ख्वाहिश, प्राप्त जीवनमे सुखानदकी प्राप्ति, उसके चिरतन सामीप्यकी अपेक्षा, और उस अपेक्षा पुष्टयार्थ उस सुखानदकी रक्षाके प्रयत्नमे ही प्रवृत्तिशीलता-होती है। इसके लिए सर्वश्रेष्ठ साधनका अनुसधान करते करते आविष्कार हुआ भक्तिका भगवद भक्तिका-जिससे वह अपनी अतरात्माकी चिरतन शान्ति, लौकिक सुख-समृद्धि, अतत शाश्वत-मुक्ति सपत्ति प्राप्त कर सकता है। यह भक्ति-भगवतके प्रति स्वच्छद रूपसे भावोकी—द्रव्य या भावसे--मुक्त अभिव्यक्ति है, अत इसे स्वरूपोमे बाधना यह प्रथम दृष्टिसे उपहासजनक लगता है फिर भी उसमे कुछ सामान्यत साम्यताको देखते और अनुभूत करते हुए उसके कुछ स्वरूपोको हम निश्चित कर सकते है जो सर्व धर्ममे विभिन्न रूपसे-परमात्माके परोपकारादिके कारण कृतज्ञता भगवतके रूप-गुण-कार्यादिके प्रति अहोभाव-आश्चर्यादिके गान रूपमे प्रकटीकरण भक्तके स्वदोष प्रदर्शन और क्षमा प्रार्थना आदि पाये जाते है। भागवतमे वर्णित नवधा भक्ति या कबीरकी निर्गुण और सूर-तुलसी आदिकी सगुण-भक्ति, जैन कवियोकी पचपरमेष्ठि स्थित सालबन या निरालबन भक्ति अथवा नवपदादिके प्रति समर्पण भाव भक्ति आदि अनेक रूपोको भी इन्ही स्वरूपोमे समन्वित कर सकते है।

महाकविराज श्री आत्मानदजी म.की जीवन झलकसे विदित है कि जन्मजात कर्पूर-ब्रह्म क्षत्रिय,

लाला जोधाशाहके घर ढूंढक साधुओके साहचर्यसे स्थानकवासी साधु बननेवाले, सत्यके मशालचीने कैसी कष्ट साध्य और अति दुष्कर परिस्थितिमें सत्यकी रक्षा करके शुद्ध जैनधर्मकी ज्योत प्रकाशित की थी। अद्भूत-अनिर्वाच्य और आत्मीय सुखानुभूति प्राप्त रससिद्ध कवीश्वर आचार्य प्रवरश्रीने उस चिद्घनानद स्वरूप वीतरागके कायिक दर्शन-वदन-आसेवन, वाचिक कीर्तन रूप अत स्पर्शन और मानसिक अर्चनसे आत्मिक रटण-स्मरण-श्रवण रूप अनेकविध भाव भक्तिसे छलाछल ऊर्मिल हृदय तत्रीके तारको झकृत करनेवाले मानो वीणावादन करते हुए जो पचपरमेष्ठि स्थित परमात्माकी विविधा भक्तिके सूर प्रवाहित किये हैं, किसी भी सहृदयके चित्तको सहज ही मे मत्रमुग्ध कर देनेको समर्थ है ना सामान्य जन-जनके अतरको भी रससागरमे निमज्जन करानेकी क्षमता रखते है। वीतराग देवकी अगरचना करके जो साकार रूप अरिहतके दर्शन करते समय आपके भाव बहे है उस भक्ति-सरितामे भाविक स्नान करते है

"तुम चिद्घन चंद आनंदलाल, तोरे दरसनकी बलिहारी।

तोरे दरसनकी बलिहारी आनंदलाल दरसनकी बलिहारी.........

अलख निरंजन ज्योति प्रकासे, पुद्गल संग निवारी. . तुम चिदघन चंद....

सम्यग् दरसन ज्ञान स्वरूपी, पूर्णानंद विहारी .... तुम चिद्घन चंद....." [२६]

इन काव्य पंक्तियोको गाते गाते अतरके जिस उदात्त और प्रसन्नताभरे भावकी अनुभूति होती है- भक्तिकी जिस अनुरूपता-चिन्मयताका आस्वाद प्राप्त होता है वहाँ कविकी अनूठी भक्तिका परिचय करवाता है। शृगाररसकी मस्तीको भी म्हात करनेवाली यह आत्मोन्मुख शातरसकी प्रवाहिता भक्ति निरतर प्रभाववृद्धि कारक बन पडी है।

इसके अतिरिक्त अनेक काव्योमे तरणतारण, करुणानिधान, परदु भजन रूप साकार अरिहत देव और चिदानद स्वरूपी, अचल, अक्षय, निरजन-निराकार सिद्ध भगवतके दर्शन-वदन-आसेवनादि भावोकी झलके दिखाई देती है।

"जिन दर्शन मोहनगारा, जिने पाप कलंक पखारा।

भवोदधि तारण पोत मिला तूं, चिद्घन मंगलकारा

श्री जिनचंद जिनेश्वर मेरे, चरण शरण तुम धारा... ...जिन...

अजर, अमर, अज, अलख निरंजन, भंजन करम पहारा.

आत्मानंदी पाप निकंदी, जीवन प्राण आधारा... जिन दर्शन ...." [२७]

"सुविधि जिन वंदना, पाप निकंदना जगत आनंदना. मुक्तिदाता......." [२८]

"भविजन वंदो रे, धरम जिनेसर, धरम सरूपी, जिणंद मोरा:

परम धरम परगासै, परदुःखभंजन, भविमन रंजन......"

"जिनंदा तेरे चरण कमलकी रे, जो करे अर्चन नरनारी

नैवेध भरी शुभ थारी, तन मन कर शुद्ध आगारी. . " [३०]

इस प्रकार भक्तिरसके भावमे सराबोर करनेवाली, आत्मोज्ज्वलता प्रदाता, अतरकी गहराईको छू लेनेवाली रचनाये प्राप्त होती है।

भगवतके जिस अप्रतिम रूपका कविराजने दर्शन किया-वदन किया उसी अनुभूत रूपको विविध भगिमामे व्यक्त करते हुए जैन दर्शनाधारित साकार-निराकार स्वरूपोका तादात्म्य जिस नैसर्गिक शब्दावलिमे अद्भूत गेय रूपमे, कीर्तित करते है वे आश्चर्यकारी है, क्योकि जिसे अन्य दर्शनकारोने 'नेति नेति' कहकर अनिर्वचनीय कहा, उसी स्वरूपको—अतरघटके अनुपम रहस्यको—व्यक्त करते हुए सपूर्ण अध्यात्म और योगके सुदर व सरस समन्वयसे एक विशिष्ट भव्यताके साथ कलात्मक रूपमे प्रस्तुत किया है। इस काव्य प्रवाहमे वहती है सरल शातता, छलकती है अतर वेदनामे भी सभाव्य साध्य प्राप्तिकी मधुरता-जो कविकी सहज प्रतिभाको प्रतिबिम्बित करती है- **"ऋषभ जिणंद विमलगिरि मंडन, मंडन धर्मधुरा कहीये।**

तूं अकल सरूपी, जारके करम भरम, निज गुण लहीये.....

अजर अमर प्रभु अलख निरंजन भजन समर ममर कहीयें

तुं अद्भूत योद्धा, मारके करम धार, जग जस लहीये....

अव्यय विभु ईश जगरंजन रूपरेखा विन तुं कहीये,

शिव अचर अनंगी तारके जग जन, निज सत्ता लहीये.....

आतम घटमें खोज पियारे, बाह्य भटकतो ना रहीयें

तुं अज अविनाशी धार निजरूप, आनंद घन रस लहीये......" [31]

इसके व्यतिरिक्त विभिन्न द्रव्यो एव भावसे साकार रूप अरिहंत भगवतकी भक्ति करते हुए महान फल स्वरूप संसार सागरसे तिरानेवाली अनेक तरंग लहरियाँ प्राप्त होती है

"पूजा अष्ट प्रकारकी, अंग तीन चितधार; अग्र पच मन मोदसे, करी तरियें संसार।

न्हवण विलेपन सुमन वर, धूप दीप अति चंग; वर अक्षत नेवेद्य फल, जिन पूजन मन रग।।"... [32]

मुमुक्षु भक्तजनोके प्राणाधार श्रीपचपरमेष्ठी एव नवपद दाता नवधा-भक्तिके आलवन श्रीनवपदजीमे समाहित सुदेव-सुगुरु सुधर्मकी भक्तिका स्वरूप भी दृष्टव्य है

"देव धर्म गुरु तत्त्वकी, सद्दहणा परिणाम; सातों मिलके मिट गये, सम्यग् दर्शन नाम।" [33]

जैन दर्शनने योगको भी भक्तिकी एक धाराका रूप दिया है। इस योग साधनाके सालबन और निरालबन रूपके निरूपण भी आपके काव्योंमे हुए हैं।

"योग असंख ही जिनवर भाषित, नवपद मुख्य करी।

कर अवलंबन भवि मन शुद्ध, कर्म जंजीर जरी।।" [34]

परमात्माकी मन-वचन-कायाकी तद्रुपतायुक्त की गई अर्चना क्या रग लाती है-

"ए नवपद शुद्ध अर्चन करके, निज घटमें हि धरी।

चिदानंद घन सहज विलासी, भव वन दाह करी।।" [35]

"अरिहंत पद अर्चन करी चेतन, निज स्वरूपमें रम रहीये" अथवा

"जिन अर्चन सुख दाना रे भविका जिन अर्चन सुखदाना......

आतम आनंद शिवपद रंगी, संगी सदा आधाना रे ....जिन [36]

भक्ति अखड बहनेवाली सरिता है जो साध्य-समुद्रकी ओर निरतर गतिशील रहकर लक्ष्यको प्राप्त करती है। भक्ति अत्यन्त प्रकाशवान तेजपुज है जो आत्म-ज्योतिको परमात्माके जाज्वल्यमान प्रकाश-ज्योतिमे विलय कराके शाश्वतता प्रदान करती है। लेकिन इस परम साध्यकी प्राप्तिके लिए भौतिक-लौकिक-पार्थिव कामनाये, वासानाये एव भावनाये त्याग देनी चाहिए। इच्छाओ-अपेक्षाओंकी जजीरे कर्ममुक्तिके इच्छुक आत्माके लिए बधनकर्ता है। ये तृष्णाये भगवद् भक्तिसे ही विलीन हो सकती है और जीव परम विश्रामको प्राप्त हो सकता है। आचार्य प्रवरश्री ऐसी एकाग्रतापूर्ण समर्पित सेवाको सजीव करते है-

"मो मन तुम विन कित ही न लागे, ज्यूं भामिनी वश कामी

जनम जनम तुम पदकज सेवा, चाहुं मन विसरामी

रंभा-रमण सुरिंदपद-चक्री, वांछु हु नहीं निकामी,

आतमराम आनंद रसपूरण, दे दरिसन सुखधामी।।" [37]

ऐसे ही परमात्माके साथ भेदाभेदताको चित्रित करते हुए गाते है

"तुं है अचरवरा, मै हु चलनचरा, मुझे क्युं न वनाओ आप सरा?

जब होश जरे, और मोंग टरे, तुं और नही मे और नही.

तुं है भूपवरा शंखेश खरा, मैं तो आतमराम आनदभरा,

तुम दरस करी, सब भ्रान्ति हरी, तु और नही में और नहीं।" [38]

जगतकी अनुकपा अधकार फैलाती है जबकि जिणदजीका अनुग्रह चिरतन ज्योति जगाता है। विश्वके

दीन, दैन्य, दुःख गर्ताके घोर अंधकार बीच भी परमात्माकी स्नेहासिक्त करुणाधारासे सिंचित भक्त हृदयका मान उसकी परम निष्ठाको प्रस्फुटित करता हैं-

"तुं महावीर गुरु मेरा रे, हुं बालक चेरा तेरा
जिणंदा तोरे चरणकमलकी रे, हुं भक्ति करुं मन रंगे
ज्युं कर्म सुभट सब भंगे, हुं बेसुं शिवपुर श्रंगे
वीरजिन दाता रे, करो मुझ शाता रे, प्रभु तुं तारक मेरा
करुणानिधि स्वामी मेरा, हुं शासन मानुं तेरा जिणंदा तोरे." [48]

कविवर श्रीआत्मानंदजीम को नैसर्गिक रूपसे ही सिद्धकविके रूपमे हम अनुभूत करते हैं जो काव्यका निर्माण करते नही, लेकिन, लगता है उनके असीम भावगंग और भक्तिभरे दिलमे भरपूर भावोके अनेक निर्झर कलकल निनाद कर रहे हो और बरबस फूटकर काव्यरूप बन जाते हो। उन रचनाओमे भक्त कविराजश्रीने वदन-पूजन-अर्चन करते हुए दास्यभक्ति व सख्यभक्ति–दोनो स्वरूपोका आलेखन किया है। आपकी इस सांगितिक स्वरलहरीके प्रवाहने कई मूर्तिभंजको-उत्थापकोको आत्मीय उल्लासयुक्त मूर्तिपूजामे लयलीन बनाये और परमात्मा पूजनमे अग्रसर किये। आपकी रचनाओमे सर्वस्व समर्पित, केवल कर्ममुक्ति–संसारकी सर्वश्रेष्ठ सिद्धिकी ही याचनाके स्वर कदम कदम पर सुनाई देते हैं। साथ ही साथ विश्वके विभिन्न धर्मोमे जैनधर्मका सर्वोच्च स्थान क्यो हैं इसे भी प्रदर्शित किया है-

"एक ही सूरज जग परगासे, तारप्रभा तिहां कोन गणंदा।
ऐरावण सरिसो गज छंडी, लंबकरण मन चाह करंदा।।
जिन छोडी मन अवर देवता, मूढ़ मति मन भाव धरंदा।
कोई त्रिशूली चक्री फुन कोई, भामिनिके संग नाच करंदा।
"शांत रूप तुम मूरति नीकी, देखत मुझ मन हुलसंदा।
श्री श्रेयांस जिन अंतरजामी, जग विसरामी. त्रिभुवन चंदा...." [49]

जिस देव रूपका गुरु आतमने अनुभव किया-दर्शन किया उसका सतत स्मरण, निरंतर रटण-अंतस्तलमे गुंजनादिका अंकन भी मन मोहक बन पडा है-

"अनहद नाद बजे घट अंदर, तुंही तुंही तान उच्चारे रे श्री शंखेश्वर निज गुणरंगी.......
"तेरो ही नाम रटत हुं निशदिन, अन्य आलंबन छारे रे।
शरण पड्येको पार उतारो, एसो विरुद तिहारे रे... श्री शंखेश्वर" [50]
"श्याम मेघ सम पासजी निरखी, आतम आनंद शिखी जिम हरखी।
कर्न शब्द मुख पास तुंही तुंही, यही रटना रट लइ रे....." [51]

अतः हम यह कह सकते है कि महाकवीश्वर श्रीआत्मानंदजीके काव्य भक्तिरससे लबालब भरे है क्योंकि वे भक्त पहले थे कवि बादमे। निर्मल भाव-जल भरपूर मनसरमे 'आतम हंस' मुक्ति-मौक्तिकका चारा चुगते हुए विहर रहा है। जिन भक्तिकी श्रेष्ठता भी इसीमे है जो जिनके साथ जन-जन और जीवमात्रके प्रति भी करुणार्द्र दिलसे हमदर्द बनकर विश्व प्रेमका शंखनाद फूके। सुरीश्वरजीके दिलकी गहराईमे भी इन्ही उच्च और श्रेष्ठ भावोकी अवस्थितिकी झलकको श्रीदेवकुमार जैनने प्रदर्शित की है-

"वैरीका उद्धार करो तुम देकर शुभ उपदेश; पापकार्यमें सदा बचो सब, उरमें भक्ति जिनेश।
प्रेम सूत्रसे जगको बांधो, बनो उदार विशेष ।। सादा रहन चलन भोजन हों, देशी वस्त्र अरु वेष।
धर्म समाज देश सेवामें, हो मन लग्न हमेश।। हिन्दी राष्ट्रभाषा सब मानो, अहिंसा वीरादेश।
भारतीय सुरीच्छा अंतिम, हो स्वतंत्र मम देश।। सुनो सब विजयानंद आदेश।" [52]

आध्यात्मिक गांभीर्य (सैद्धान्तिक संकेत):—जैनाकाशके ओजस्वी आदित्य श्री आत्मानंदजी म. केवल सत्यके उपासक थे। जीवन-सत्य व आत्म-सत्यका अनवरुद्ध अन्वेषण करते करते इन्होने जिन आदर्शोंका

सधान किया वे परमार्थके लिए पेश भी किया। इस आध्यात्मिकताके गहन-गभीर अनुभूत सत्योको विशेष रूपसे आपने गद्यमे निरूपित किया है, लेकिन, आचार्य प्रवरश्री दार्शनिक होने पर भी कला-रसिक आत्मा थे-जन्मजात काव्यकार-कवि थे. अत क्लिष्ट-गूढ दार्शनिकताको भी अप्रतिम भावधारामे-काव्यरूपोमे-सजाकार प्रवाहित किया ·

जैन दर्शनका सैद्धान्तिक हार्द, स्याद्वाद एव अनेकान्तवादमे निहित है, जिससे विश्वके सर्व दर्शनोके सिद्धान्तोको 'स्यात्'की सप्तभगी एव प्रमाण-नयादिके सहारे सहज रूपमे ही समन्वित कर सकते है, क्योकि प्रत्येक दार्शनिक धाराके विभिन्न सिद्धान्त एकागी प्ररूपणा रूप होनेसे एक-दूसरेसे परस्पर व्याघात पाते है. इसलिए उन मताको 'अज्ञान अधकार" कहकर जैन दर्शनने अपने स्याद्वाद सूर्य'से उसे कैसे नष्ट किया इसे वर्णित करते हुए जो चित्र खिचा है- "प्रवचन अमृत रस भरी ध्यानें, चिद्घन रंग रंगील रे।

कुमति जाल सब छिनकमे जारे, प्रगटे अनुभव लील रे।।

तीनसो साठ तीन मतधारा, जगमें तिमिर अज्ञान रे .

जयो जिनवचन सूर तमनाशक, भासक अमल निधान रे. ...

सप्तभंगी नय सप्त सुंहकर, युंक्तमान दोय सार रे।

षड्भंगी उत्सर्गादिककी, अड पक्ष सम्यक् कार रे.. . प्रवचन पद भवपार उतारे" [४४]

इसी तथ्यको अन्य रूपमे भी प्रस्तुत किया है—स्याद्वादें-वनराज, दुर्नय-स्यारवृदको अपने दर्शन मात्रसे ही कैसे पलक झपकते भगा देते है इस चित्रको देखे-

"स्याद्वाद नयपंथमें, पंचानन बलपूर: दुर्नयवादी वृंदको, करे छिनकमे दूर" [४५]

इस रहस्यको प्रकट करनेके पश्चात अपनी काव्य धाराको आगे बढाते हुए उत्कृष्ट जैन दर्शनकी विशिष्टताको वर्णित करते हुए इन्होने जिक्र किया है कि एक जैन दर्शनकी ही देन है कि वह स्याद्वादके सहारे अन्य सबके साथ (इतर दार्शनिक सिद्धान्तोके साथ) समन्वय कर सकता है। द्वैतवादी अद्वैतवादीसे टकराता है, तो निर्गुण-सगुणका उपहास करता है चार्वाक आत्माका मूल ही उखाड फेकता है, तो वेदान्तीकी उधेडबून विचित्र ही है। इन विभिन्न दर्शनोका समन्वय जैन दर्शनमे प्राप्त होता है-यथा-दो विरोधी सगुण-निर्गुण भगवद् रूपोको समन्वित करके समन्वय रूपमे जैनधर्म स्वीकारता है। श्री अरिहत सगुण रूपका और श्री सिद्ध भगवत निर्गुण ब्रह्म स्वरूपका प्रतिनिधित्व करते है, जिसे श्री महामत्र नमस्कारमे देव तत्त्व स्वरूपमे 'नमो अरिहताण नमो सिद्धाण'—रूपमे दोनोको नमस्कार किये है ।

इसे ही कविश्रेष्ठने वखुबी अपने काव्यमे भी अभिव्यक्ति दी है ·

सगुण रूप- "अरिहंत पद मनरंग चिदानंद अरिहंत पद मनरंग

चिदानंद घन मंगल रूपी, मिथ्या तिमिर दिणद: चौतीस अतिशय, पैतीसवाणी, गुण बारे सुखकंद.. .

चार निक्षेप रूप जग रंजन, भंजन करम नरिंद: ज्ञायक नायक शुभगतिदायक, तुं जिन चिद्घन वृंद " [४६]

निर्गुण रूप- "सिद्ध अचल आनंदी रे, ज्योतिमें ज्योति मिली।

अज अलख अमूरति रे, निज गुण रग रली। शिव अजर अनगी रे, करम को कंद दली।। .

नभ एक प्रदेशे रे, सब सुख पुज मिलि। बंधन छेद असंगा रे, पूर्व प्रयोग फली। " [४७]

देव-गुरु-धर्म—जैनदर्शनकी इस तत्त्वत्रयीको परस्पराश्रयी दिखाकर उनकी साधनाकी ओर सकेत किया है

"दर्शन विना ज्ञान नहीं भविकुं, मानो तो सही, विना ज्ञानके चरण न होवे, जानो तो सही ।

मिट गई अनादि पीर, चिदानद जागो तो सही माध्य दृष्ट मवे करणी कारण धारो तो सही" [४८]

जैन दर्शनके प्राणाधार 'नवपद'का स्वरूप और कार्यका वर्णन करते है ·

"अखिल वस्तु विकासन भास्करं, मदन मोह तमस्सु विनाशकम्;

नवपदावलिनाम सुभक्तितः शुधिमना प्रजयामि विशुद्धये।।" [४९]

सम्यग्-दर्शन्, सम्यग्-ज्ञान, सम्यग्-चारित्र रूपी रत्नत्रयीको ही जैनदर्शनमे मोक्षमार्ग, मोक्षमार्गके साधन और

मोक्षमार्गका साध्य माना है। इस श्रद्धेय सुरीश्वरजीने कैसे ग्रथन किया है-दृष्टव्य है-

स दर्शन- **"सम्यग् दर्शन पूज ले, जिम मिटे मन झोला**
मल उपशम, खय उपशमे, खयसे दृग खोला। त्रिविध भंग सम दर्शने, जिनवर इम बोला।।...." [60]

स ज्ञान- **"सबमें ज्ञानवंत वड़वीर, काटे सकल कर्म जंजीर....**
"ज्ञान सुंहकर चिद्घन संगी, सप्तभंगी मत सारे रे.... शुद्धज्ञान मिथ्यात्व मिटेसे, ज्ञानावरण विडारे रे......
गुरु सेवासे योग्यता प्रगटे, हेय उपादेय कारे रे..... ज्ञेय अनंत स्वरूपे भासे, दीप तिमिर जिम टारे रे.....
नित्यानित्य नाश-विनाशी, भेदाभेद अभगी रे... एक अनेक ही रूपी अरूपी, स्याद्वाद नय संगी रे
सशय सर्व ही दूर निवारे, आतम मम रस चंगी रे "

स चारित्र "चय ते अष्ट कर्मका सशय, रिक्त करे सब थाना र
चारित्र नाम निर्युक्तिए भाष्यां, ते वंदु गुण ठाना रे चारित्र मुज मन माना रे, भाविका.... "

ऐसे ही षट्‌द्रव्य, कर्मविज्ञान अष्ट-प्रवचन-माता, सामायिक, आदि अनेकानेक अध्यात्मके रहस्यमयी तत्त्वोको सरल-साकेतिक फिरभी भावपूर्ण कविता सरितामे बहाकर आत्मशीतलताके लाजवाब असबाब उपलब्ध करवाये है। "पंच समिति तीन गुप्ति धरे नित, निशदिन धरत विराग....
चार प्रमाण द्रव्य षट् माने, नव-तत्त्व दिलमें चिराग... सामायिक नवद्वार विचारी, निज सत्ताको विभाग....

अत निष्कर्ष रूपमे हम देख सकते है कि अध्यात्मके अवधु श्री आत्मानदजी म ने आराधना-साधना एव सिद्धान्तोको भी छदोबद्ध करके सगीतकी स्वर लहरियोके साथ असाधारण कलात्मक काव्य रूपोमे अकित किया है।

उपदेश रहस्यः-- जिनके व्यक्तित्वमे अद्‌भूत सुधारकता, शुद्ध सयमकी प्रतिभा और प्रताप, दृढ निश्चयी मनोबल एव भगवान श्री महावीरके प्रति सच्ची-शुद्ध श्रद्धा छलकती हे जिनशासनके सरक्षण और सगठनके लिए शात-सात्त्विक अहिंसक रूपसे सत्यके प्रचार-प्रसारका उदात्त आग्रह हो, वर्णभेद-वर्गभेद और जातिभेदसे नितान्त दूर '*सवि जीव करु शासन रसी*'की सद्‌भावनाके रग छाये हो, ऐसे क्रान्तिकारी, युगनिर्माताका यह सहज स्वभाव ही बन जाय कि, वह अन्यको प्रेरणा करे, प्रोत्साहित करे, उपदेश द्वारा उत्तेजित करे, निजात्म व परात्म-कल्याणके राह पर कदम बढ़ानेको-तो उसमे आश्चर्य ही क्या! सगदिलोको सहृदयी बनानेके लिए, कर्माधीन जीवोके उद्धारके लिए, जिन शासनकी सेवाके लिए जिन्होने अपना सर्वस्व न्यौछावर किया, आजीवन जिसने जनजनकी-जीव मात्रकी हितचिंतामे ही जो सर्वतोमुखी शक्ति लगा दी-ऐसे परमोकारी, विरल विभूतिने अपने अक्षरदेहसे भी अधिकाश रूपमे जिनशासनकी वैसी ही खिदमत की जिसे भावि सतति कभी भूला नही सकती।

इनकी एक पद्य कृतिका नामाभिधान ही '*उपदेश बावनी*' है जो आपकी सर्व प्रथम रचना है और जिसमे भाविकोको देव-गुरुका स्वरूप परिचय कराते हुए धर्मतत्त्वकी आराधना-साधनाका उपदेश दिया है-

> **"थोरे सुख काज मूढ़ हारत अमर राज, करत अकाज जाने लेयुं जग लुंटके।**
> **कुटुंबके काज करे आतम अकाज सारे, लछि जोर, चोर हरे, मरे शीर फुटके।**
> **करम सनेह जोर, ममता मगन भोर, प्यारे चले छोर, जोर रोवे शीर कुटके।**
> **नरको जनम पाय, वीरथा गमाय ताह, भूले मुखराह, छले रीते हाथ उठके।।"**

सर्वश्रेष्ठ रिद्धि समृद्धि एव भौतिक सुखके भोक्ता, देवलोकके देवको भी वाछनीय ऐसे मानव भवको पाकर मनुष्यको क्या करना चाहिए इसे दर्शाते हुए कहते है-

> "देवता प्रयास करे, नरभव कुल खरे, सम्यक् श्रद्धान धरे, तन सुख कार रे।
> **करण अखंड पाय, दीरघ सुहात आय; सुगुरु सजोग थाय, वाणी सुधा धार रे।**
> **तत्त्व परतीत लाय, सजम रतन पाय, आतम सरूप धाय, धीरज अपार रे।**
> **करत सुप्यार लाल, छोर जग भ्रमजाल, मान मीत जिन्काल, वृथा मत हार रे।"**

जैसे सुहागन नारीका द्योतक भालतिलक होता है ठीक वैसे ही, कविराज, आत्म सुहागनके सुमति(शुद्धबुद्धि)सकेतस चेतनजी (आत्मा)को शुभमनसे द्रव्य-समाधि और शुद्ध मनसे भावसमाधि प्राप्त करके अतस्तलके पक्षपातको धारण करनेकी हिमायत करते हैं-

"धारो धारो समाधि केरो राग, राचोरे चेतनजी, मन शुद्ध लाग....

द्रव्य समाधि भाव समाधि, सुमति केरो सुहाग....राचोरे...." [५६]

इस दूषम कालमे जीवको समाधि-प्राप्ति अत्यन्त दुष्कर एव दुर्लभ है। शान्ति व समाधि-जलको, आधि-व्याधि-उपाधिकी दैहिक दैविक और भौतिक भीषण तपनने तपाकर अदृश्य कर दिया है। मानवमात्रकी गहन समझ या विशाल-आज अत्यधिक विकट एव विकराल समस्या है समाधि प्राप्ति। इसकी अत्यन्त सरलतम तदबीर फरमाते हुए सहृदय कवि गुनगुनाते है -

"पूजन करो रे आनंदी, जिणंद पद, पूजन करो रे आनदी...

अष्ट प्रकारी जन हितकारी, पूजन सुरतरु कंदी...जिणद पद....

आतमराम आनंद रस पी ले, जिन पूजत शिवसंगी....जिणंद पद...." [५७]

अथवा इन आठो भेदसे न हो सके, केवल जिनेश्वरकी धूप-पूजाकी भी परिणति कैसी हैं देखे-

"धूप पूजा अघ चूरे रे भविका धूप पूजा अघ चूरे।

भवभय नासत दूरे रे भविका धूप पूजा अघ चूरे।।...

आतम धूप पूजन भविजनके, करम दुर्गंधने चूरे रे भविका धूप पूजा अघ चूरे। [५८]

जीवनकी क्षणभगुरताको दर्शाकर उस भौतिक भ्रमजालमे न उलझनेकी सीख देते हुए सज्झायमे उलाहना देते हैं-

"तुम क्यों भूल परे ममतामें....

जीवित रूप विद्युत सम चंचल, डाभ अनी उद-बिंदु लगेरो;

इनमें क्यों मुरझायो चेतन, सत् चित् आनंद रूप एकेरो...तुम क्यों...." [५९]

केवलज्ञानको अवरोधनेवाले कर्मोका स्वरूप निरूपित करते हुए उससें प्रीत तोडनेकी शिक्षा माढ रागमे सुदर लयके साथ प्रस्तुत की है-

"प्रीति भांगीरे कुमति शुं....

ज्ञान दरसणावरणी दोउ रे, इसके पूत कपूत; महानंद गुण सोसियो रे, वेदनी दास करूर....प्रीति.....

कुमता तात भयंकरू रे, मोहे मोह गरूर....कुमति शुं प्रीति भांगीरे...." [६०]

'स्वमे बस-परसे खस' इसी उक्तिको चरितार्थ करते हुए-परस्वभावसे आत्म स्वभावमे आनेके लिए प्रेरणा करते हुए आत्माको उपालभ देते हे-

"तैं तेरा रूप न पाया रे अज्ञानी....(२)

देखी रे सुंदरी, पर की विभूति, तुं मनमें ललचायो रे...

एक ही ब्रह्म रटि रटना रे, परवश रूप भूलाया रे अज्ञानी [६१]

इस आत्म स्वभावमे स्थिरता कैसे हो? उसकी युक्ति भी प्रकाशित करते है

"सुगुरु सुदेव सुधर्म रस भीनो, मिथ्या मत छिटकाया रे

इन्द्रिय-मन चंचल वश कीनो, जायो मदन कु राया रे

आत्मानंदी अजर अमर तु, सत्चिद् आनद राया रे ते तेरा रूपकूं पाया रे सुज्ञानी..." [६२]

श्री आत्मानदजी म सा सर्व जीवराशिके प्रति स्व पर आत्म कल्याण करके सर्वआतमराम चिदानदघन बने-आत्मासे परमात्मा पद प्राप्त करे यही कामना हार्दिक अभिलाषाके साथ अनेकानेक रचनाओमे गूढ रहस्योको सरलतासे विश्व समक्ष प्रस्तावित करते हैं।

कलात्मकता-भावात्मकता और दार्शनिकताके पुट-निदर्शन--

कलात्मकता- किसी भी कृतिमे कलासे युक्तताको कलात्मकता कही जाती है। जीवन भी एक कला ही

है। बिना कलात्मकताके जीवन शुष्क-निष्प्राण या निर्माल्य सा बन जाता है। अतः कलाका मानवजीवनमे श्रेष्ठ व महत्वपूर्ण स्थान है। जीवनके रसात्मक सौंदर्यानन्दसे तराबोर करनेवाली, कल्याणकारी, उत्तम और उदात्त भाव प्रदात्री कलाका साहित्यमे प्रमुख स्थान माना जाता है. क्योकि कलासे काव्यमे भावोकी सप्रेषणीयता और भावाभिव्यक्तिको प्रबलता एव सजीवता मिलती है। जो काव्यकृति प्राकृतिक सौंदर्याकन द्वारा जीवनोत्कर्षक घटना तथ्योके चित्राकन करती है, छदोबद्धता एव सगीतात्मक गेयतादिके साथ हृदयगम भावो, आत्म विशुद्धिके उत्तम पथप्रदर्शन एव सामाजिक कल्याणकारी अनुभूत सत्योको प्रत्यक्ष करवाकर दूरस्थको निकट लाकर अदृश्यको दृश्यमान बना देती है-ऐसी अनेकविध कलात्मकताके साथ विविध भाव भगिमाओको समन्वित करके रची गयी है वह काव्य कृति उत्कृष्ट कोटीकी बन सकती है और चिरस्मरणीय व विशेषत अति लोकप्रिय भी बन जाती है

"त्रिषष्ठी शलाका पुरुष" ग्रथराजमे सूरि सम्राट श्री हेमचद्राचार्यजी महाराजजीने पुरुषोके लिए बहत्तर प्रकारकी और स्त्रियोके लिए चौसठ प्रकारकी कलाओके प्रथम तीर्थपति श्री आदिनाथजी भगवत द्वारा किए गए सर्व प्रथम प्रचलन एव प्रसारणका जिक्र किया है जिनमे वाद्य-उदकवाद्य-नृत्य-नाट्य-चित्राकन-शिल्प-आलेखन, माल्य ग्रथनादि कलाओके साथ साथ गीत–प्रगीत (काव्य) रचनाको भी कलाके रूपमे स्वीकार्य किया है। इन सभी कलाओका अथवा इनमेसे एकाधिक प्रकारकी कलाका जब एक ही विधामे समन्वय किया जाता है, तब काव्यानद अपनी चरमावधि पर पहुँचता है।

कविसम्राट श्रीआत्मानदजीम की रचनाओमे भी ऐसे ब्रह्मानद सहोदर रसानदका आस्वाद लिया जा सकता है। इनकी रचनाओमे कई जगह शाब्दिक चित्राकन हुआ है; तो कही पर नाद सौंदर्य छलकता है। सगीत तो इनकी रचनाओका प्राण है, क्योकि नैसर्गिक बक्षीसके रूपमे जन्मजात गुणवत्ताके रूपमे सगीत इनके रोमरोमसे प्रकट होता था। उनकी गद्यमय उपदेश-धारा(प्रवचनो) मे भी सगीतकी झकृति मिलती थी-वही आरोह अवरोह, लयबद्धता और तालके साथ उस स्वरसम्राटके शब्दरव श्रोताके कर्णपटल पर लास्य नर्तन करते रहते थे।

अतः प्रायः प्रत्येक काव्य रचना–गीत, प्रगीत, पद, मुक्तक स्तवन सज्झाय, पूजादि–मे सर्वत्र राग रागिनियोके ताल-लय-नाद या छदोबद्धता पायी जाती है। फिर भी विशेष रूपसे इनकी रचनाओमे खमाज, वडहस, बिहाग, बसत, माढ, भैरवी, मालकोश, जयजयवती, पीलू, रेखतादि अनेक रागोका, दीपचदी, कहरवा, पजाबी-ठेकादि तालोका मराठी सोरठी, ठुमरी गजल, आदि चालोका गुजन श्रुतियुगलोको झकृत करता रहता है और प्राकृतिक-मानवीय एव मानवेतरादि प्रासगिक शब्द-चित्रोके रग अपनी प्रभा बिखेर रहे है। आपका प्रिय छद है 'सवैया इकतीसा'-जिसमे 'उपदेश-बावनी' 'ध्यान-स्वरूप' आदिकी उपदेशात्मक रचनाये हुई है। जबकि दोहा, अडिल छदोमे 'पूजा' आदि काव्य प्रकारोका इद्रवज्रा आर्यावृत्तादिमे स्तवनादिका सृजन हुआ है। पूजाकी ढालोमे विविध रागोका निरूपण, भावोको उपयुक्त प्रवाहित प्रभावकता प्रदान करता है। जिस मालकोश रागमे श्री अरिहत परमात्मा देशना (प्रवचन) प्रदान करते है और जो राग देवलोकके देवोको भी अत्यन्त प्रिय है उसी मालकोशमे कवीश्वरने अरिहत परमात्माके देवो द्वारा मेरुगिरि पर किये जानेवाले जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमे स्नात्र महोत्सवको वर्णित किया है जो मानो साक्षात् स्वरूपमे अत्यन्त प्रभावोत्पादक बन पडा है।

"न्हवण करो जिनचद, आनंदभर न्हवण करो जिनचद
कंचन तन कलश जल भरके, महके वास सुगध आनद भर
सुरगिरि उपर सुरपति सगरे, पूजे त्रिभुवन इंद आनदभर
श्रावक तिम जिन न्हवण करीने, टेक कलिमल फद....आनदभर
आतम निर्मल सब अघ टारी, अरिहंत रूप अमद आनदभर "[14]

इनके रसमाधुर्य और श्रुतिपेशलता एव छटायुक्त सजधजके साथ चमत्कृत व मर्मस्पर्शी गेयकाव्योमे जो

रसफुहार बरसती है, वह रसमर्मज्ञ-रसिक आत्माको उस रस सागरमे निमज्जन कराते हुए अ रकी ऊर्मियोको उछालती है। उसे दीन-दुनियाकी विचित्र उपाधियोसे मुक्त करवा कर मत्रमुग्ध समाधिमे लीन कर देती हैं। ऐसी ही एक पूजा रचना, जो हमारे भौतिक-लौकिक-दुन्यवी-मानसिक एव कायिक विकारोको भूलाकर अपूर्व, उदात्त आत्मानदका अनुभव करवाती है जिसमे कवि चिद्घनानद परमात्माके दर्शन पर बारबार बलिहारी प्रदर्शित करते हैं-कैसी है वह दर्शनानुभूति।-

"पंच वरण फूलोंसे अंगीयां, विकसे ज्युं केसर क्यारी; कुंद, गुलाब, मरुक, अरविंदो, चंपक जाति मदारी; सोवन जाति दमनक मोहे, मन-तनु, तजन विकारी . तुम चिद्घनचंद आनंदलाल तोरे दर्शनकी बलिहारी "

लगता है हमारा तन-मन और आत्मा सभी इस सुवासित अगरचनाकी महकसे मानो प्रफुल्लित बन रहे हैं और निजानंदकी मस्तीभरी मदहोशीमे झूम रहे हो, हम भी न्योछावरी कर रहे हो। श्री जिनमदिरके शिखर पर लहराकर जिनशासनकी शानकी सकेतिका-ध्वजा कैसी है ?-

"**पचवरण ध्वज शोभती, घूघरीकों घमकार, हेमदंड मन मोहनी, लघु पताका सार।।**

रणझण करती नाचती, शोभित जिनघर शृंग, लहके पवन झकोर से, बाजत नाद अभंग।।"

उसकी पूजाके समय-"**इन्द्राणी मस्तक लई, करे प्रदक्षिणा सार**

सधवा तिम विधि साचवें, पाप निवारण हार" [६४]

वह सुहागन सुदरी, ध्वजाको शिर पर लेकर हर्षातिरेक व्यक्त करती है, उसे पजाबी ठेकाकी ठुमरीमे ध्वनित-नाद सौंदर्यके स्फुट स्वर और जिस शाब्दिक चित्रके साथ प्रस्तुत किया है वह अवर्णनीय है। इस ध्वनि-नादके साथ चित्राकनका आह्लाद तब आ सकता है जब उसके असली सुर-लय-तालके साथ उसे सुना जाय। तब हम महसूस करेगे जैसे हमारी नजरोंके सामने ही वह सुहागन सुदरीका मनमोहक स्वरूप नर्तन कर रहा हो।

"आयी सुंदर नार कर कर सिंगार, ठाडी चैत्य द्वार, मन मोदधार।

प्रभुगुण विचार, अघ सब क्षय कीनो....आयी....

जोजन उत्तंग अति सहस चंग, गई गगन लंघ, भवि हरख संग।

सब जग उत्तंग, पद छिनकमें लीनो... आयी....

जिम ध्वज उत्तंग, तिम पद अभंग, जिन भक्तिरंग, भवि मुक्तिमंग।

चिद्घन आनंद, समता रस भीनो आयी ." [६५]

ऐसा ही एक शब्द चित्र परमात्म-प्रतिमाके आभरणोंसे सजे हुए स्वरूपका है। सोनेमे सुहागेकी भाँति एक एक अलकार जिनेश्वर देवके अगकी शोभाको तो वृद्धिगत करता ही है, साथमे ग्रथन किये गद्य काव्यालकार काव्यकी शोभाकी श्रीवृद्धि करते जाते है। अतत जिणंदजीका मनमोहक बिम्ब तादृश-पूर्णरूपेण उभर आता है-"**आनंद कंद पूजतां जिणंदचंद हूं...**

मोती ज्योति लाल हीर हंस अंक ज्यूं, कुंडलू, सुधार करण मुकुट धार तु..

सुरचंद कुंडले शोभित कान दूं, अगद कंठ कंठलो मुनीद नार तु.

भाल तिलक वग रंग खंग चंद ज्यू, घमक दमक नदनी कंदर्प जीत तु....

व्यवहार भाष्य भाखीयो जिणद बिम्ब यूं, करे सिंगार फार कर्म जार जार तु "

परिणामत यह जिनबिम्ब आत्माके भाव उमगकी वृद्धि करके शुद्ध भाव प्रकट कर देते है-

"**वृद्धि भाव आतमा उमंग कार तु, निमित्त शुद्ध भावका पियार कार तु....आनंद ..**" [६६]

जैन दर्शनमे परमात्माकी अनेक प्रकारसे भक्ति पूजाके स्वरूपोंको स्थान मिला है। कभी त्रिविध, कभी अष्टविध, कही सत्रहभेदी तो कही इक्कीस प्रकारसे पूजा वर्णन मिलते है। कविश्रेष्ठ श्री आत्मानदजीम ने भी इन विभिन्न रूपोको काव्य रूप देनेका सफल प्रयत्न किया है इन पूजा प्रकारोमेसे सत्रहभेदी पूजाके वर्णनमे सत्रहवे प्रकारकी पूजा होती है वाद्य पूजा। इस पूजा-गीतमे जिस अलौकिक स्वरूपको आश्चर्यकारी

मोड़ देकर प्रस्तुत किया है, वह अपने आपमे अनूठी चमत्कृति पैदा करनेवाली पेशकश है। इनके एक-एक वाद्य–वीणा, तुण, तबली–आदिने सजीव बनकर परमेश्वरके जीवनकार्य, निर्मल-वचन और उनसे आविर्भूत उज्ज्वल यशके प्रति जो हृदयोद्गार व्यक्त किये हैं, किसी भी व्यक्तिको प्राभाविक प्रसन्नतासे भर देनेके लिए सक्षम है।

"भवि नंदो जिणंद जस वरणीने....
वीण कहे जग तुं चिरनंदी, धन धन जग तुम करणीने।....भवि....
तुं जगनंदी, आनंदकंदी, तबली कहे गुण वरणीने। ...भवि...
निर्मल ज्ञान वचन मुख साचं, तुण कहे दु:ख हरणीने।....भवि.
कुमति पथ सब छिनकमे नासं, जिनशासन उद्धरणीने....भवि...
मंगल दीपक आरति करतां, आतम चित्त शुभ भरणीने....भवि...."

सर्वदर्शनोमे भवभ्रमणको अनिष्टकारी माना है, लेकिन जैनदर्शनने तो उसे असख्य रोका गहन गह्वर दर्शाया है जो आत्माकी तबाही कर देता है, जहाँ शाश्वत मुक्ति सुखके तो आसार तक नसीब नहीं होते। अनादिकालके अनत भवसमूहको महासमुद्र रूपमे वर्णित करके वह भवसायरका स्वरूप कई बार कई ग्रन्थोमे अनेक सुज्ञ-जनोने स्पष्ट करनेका प्रयास किया है। इसी भयानक भव समुद्रको तादृशरूपक स्वरूपमे रगीन कल्पना प्रवाहोकी विशाल गहराइयोसे चित्रित करके जीवत किया है–उत्तम काव्यप्रणेता श्रीआत्मानदजी म सा ने अपने काव्यमे। यह चित्रालेखन वाकइ मानवजीवन-रहस्योका एक सात्त्विक प्रभावोत्पादक रूप प्रस्तुत करता है

"भवोदधि पार कीजोजी....
अजि तुम सुणियोजी, करुणानाथ, भवोदधि पार कीजोजी....
मोह सायरकी गहरी धारा, भमर फिरत गत चार मंझारा;
मंझधार अटकी मोरी नैया, अब प्रभु पारं कीजोजी....अजि तुम....
चार कषाय बडवानल जामें, रागद्वेष मगरादिक नामें;
कुगुरु कुघाट पडी मोरी नैया, वही थाम लीजोजी....अजि तुम....
विषे इंद्री वेला अति भारी, काम भुजंग उठं भयकारी
मन तरंग वेग मोरी नैया, अब प्रभु काढ लीजोजी .... अजि..... तुम ...
पाप पुण्य दोऊ तस्कर घेर्यो ....."......मैं घेर्यो प्रभु तुम गुण केरो।"

इस प्रकार जलनिधिमें तस्करो एव हिसक प्राणियोसे घिरे, जीवनके लिए छटपटाते हुए डूबनेवालोकी नजरोमे तारणहार खेवैयाकी तमन्ना रहती है, जिसके लिए गोते खाते खाते भी वह तरसता है-ढूढता है, किसी सहारेको-जो उसे पार पहुँचाये। लेकिन अपार पारावारका पार पानेके लिए जहाँ कही भी निगाह फैलाता है, उसे निराशा और हताशा ही नजर आती है, तब श्रद्धेय गुरुदेव इगित करते है अशरणके शरण, अनाथोकेनाथ, तरणतारण मल्लाह श्री अरिहत परमात्माकी ओर, और उनकी दुहाई देते है

"तुम बिन कोन सहाई मेरो, भवसिन्धु पार कीजोजी. .अजि तुम...."

आपके अतस्तलकी अतलस्पर्शी गहराईसे प्रस्फुटित होनेवाले मर्मस्पर्शी प्रत्येक पद्योमे ऐसी रहस्यमयता छिपी है कि कैसे भी भाव या तथ्ययुक्त कृतिका समापन आत्मानद आत्मानुभव, चिद्घनानद आदिकी प्राप्तिकी प्रसन्नता या प्राप्त करनेकी तडपमे वेधक शैलीमे प्रस्तुत होता है। यही कारण है कि इतने सालोके व्यतीत हो जाने पर भी उनकी रचनाओमे भावोकी नूतनता-मनमोहकता-आकर्षकताके चमकार अद्यावधि प्राप्त होते हैं या अद्यापि ताजगीयुक्त खिले पुष्प परिमल-से मघमघायमान हो रहे है। श्री रागमे प्रस्तुत रचना–

"जिन गुण गावत सुरसुंदरी...

चपक वरणी, सुर मनहरणी, चंद्रमुखी शृगार धरी

ताल मृदंग बंसरी मंडल, वेणु उपांग धुनि मधुरी....जिन...."

यहाँ शृगार-रस और शात-रसके अद्भूत सयोजनसे जो अतरमे भाव तरगोकी लहरे उठती है वह रसागारमे तराबोर कर देती है। जैसे कवि हमे देवविमानमे होनेवाले नृत्य दृश्यका तादृश दर्शन कराते है। इससे आगे बढकर अन्य रचनामे नृत्य नाटिका जैसे साकार होती है-

"नाचत सुर वृंद छंद, मंगल गुन गा री...

कुमर कुमरी कर संकेत, आठ शत मिल भ्रमरी देत· मद नार रणरणाट, घुघरू पगधारी . .नाचत...

बाजत जिहां मृदंग ताल, धपमप धुधुम किट धमाल, ग्ग चग द्रग द्रग त्रो त्रो त्रिक नारी.. .नाचत

नता थेइ थेइ तान लेन, मुरज राग रंग देत: तान मान गान जान, किट नट धुनिधारी...."

परमात्माके आठ अतिशयोमे एक है पचवर्णी पुष्पवृष्टि। इस पुष्पवर्षाका सजीव शब्दचित्र 'अडिल' छदमे प्रस्तुत है- **"फूल पगर अति चंग रंग बादर करी, परिमल अति महकंत मिले नर मधुकरी ।**

जानुदघन अति सरस विकच अघो बींट हैं, बरसे बाधा रहित रचे जिम छिंट है...."

कामदेवके बाण समान और शृगारके साधन रूप सुविकसित-सुवासित पुष्पाच्छादि लताये और क्यारियोसे सजे उपवनकी शोभाका हूबहू वर्णन करके आचार्यदेवने उपदिष्ट किया है कि इनको जिन चरणोमे समर्पित करनेसे फलप्राप्ति है, उन कामबाणोंकी पीडासे मुक्ति प्राप्ति

"अर्हन जिणंदा प्रभु मेरे मन वसिया....

मोगर लाल गुलाब मालती, चंपक केतकी निरख हरसीया....अर्हन् .

कुंद प्रियंगु वेलि मचकुंदा, बोलसिरी, जाई अधिक दरसीया....अर्हन्. .

जल थल कुसुम सुगंधी महके, जिनवर पूजन जिम हरि रसीया....अर्हन्. .

पंचबाण पीडे नहीं मुझको, जब प्रभु चरणे फूल फरसीया....अर्हन्...."

ऐसे अनेक कलात्मक निरूपण इनके काव्योमे कदम कदम पर मिलते है। प्रभविष्णुता उसमे है कि, ये रचनाये प्रभूत भावप्रवाहोमे अवगाहन करते करते स्वत ही प्रवाहित होती रही है ।

भावात्मकता:—इनमे दृष्टिगोचर होते है सैद्धान्तिक-दार्शनिक-तात्त्विक भाव निरूपण, प्राकृतिक-मानवीय-मानवेतर सृष्टिके आलबनोंसे-प्रतीकोसे-बिम्ब योजनाओसे परमेश्वरके अनतानत गुणगान देवाधिदेवके विविध स्वरूप गान, स्वात्माके अवगुण प्रकटीकरण एव अज्ञो-बाल-हृदयभक्तो व सुज्ञजनोको (स्व आत्माको निमित्त बनाकर) सबोधन, विशेषत उपदेशक रूपमे उद्बोधन, प्रतिमा पूजनके विरोधियो और मूर्ति उत्थापकोको हितशिक्षा, साथसाथमे परमात्माकी विविध रूपमे भक्ति पद्धति परमात्माको आत्म समर्पण-सेवक भावसे और सख्य भावसे, कही बालक बनकर तो कही पर प्रियतमा बनकर। कही कही मिलते है वीतरागको दिए गए मीठे उपालभ और उलाहनाये। जैसे- **प्रथम तीर्थपति श्रीं ऋषभदेवके स्तवनमे**-

"शत सुत माता सुता सुहंकर, जगत जयंकर तुं कहीये, निज जन तार्ये हर्मोमे अंतर रखना ना चहये...

मुखडा मींचके बेसी रहना, दीन दयालको ना चइये, हम तन मन ठारो, वचनसे सेवक अपना कह दइये..."

क्योकि श्रीआदिनाथके सौ पुत्र-दोपुत्री-माता-सकल परिवार मोक्षमे गया और हम अकेले रह जाये! और फिरभी प्रभु ऑख मूद कर चुपचाप बैठे ही रहे-यह बात कैसे सही जाय !! इस लिए आगे चलकर कहाँतक अधिकार जताते है

"अवगुण मानी परिहरशो तो, आदि गुणी जग को कहीये, जो गुणीजन तारे, तो तेरी अधिकता क्या कहीये?"

उलाहनामे भी कैसा दमदार-शोखी भरा भाव है?! गुणवानको तारना सहजता है, विशिष्टता किसमे? अवगुणीको तारो! पढ़कर-सुनकर मन प्रमोद भावसे भर जाता है। लगता है जैसे दीनदयाल वीतरागदेव अभी दाता बनकर बरस पडेगे, और हम न्याल हो जायेगे।

कभी कभी, कही कही पर शब्दोकी तोड-मरोडके कारण भाषामे थोडीसी क्लिष्टता आ जाती है,

लेकिन कविके लिए यह तोड़-मरोड़ क्षम्य मानी गई है। काव्यमे व्याकरणादिसे अधिक महत्त्व भावोंके प्रबन्धका होता है। भाव तो काव्यकी आत्मा है। जैसे बिना आत्माके शरीर-देह मृतपिंड कहलाता है-चाहे वस्त्राभूषण या पुष्पादिसे उसकी कितनी ही सजावट क्यो न की जाय-निरर्थक ही मानी जाती है। वह किसीको आनंदित नही कर सकती: वैसे ही बिना भावके काव्यमे कैसी भी अलंकार-ध्वनि-प्रतीक-बिम्ब या छंदोकी अजनबी सजावट क्यो न हो निरर्थक जैसी ही लगती है। भाव, काव्यको चैतन्यता, संवेदनशीलता और विराटता बक्षता है। भाव ही काव्यका माहात्म्य चिरस्थायी बना सकता है। इन्ही भावोका आस्वाद सूरीश्वरजीकी रचनाओमे हम अनुभव कर सकते है।

छोटे छोटे दोहोमे भी कैसे गूढ भावोकी भरमार है। ब्रह्मचर्य जैसे नाजूक विषयको उसके अपूर्व और अनुपमेय महत्त्वको वर्णित करते हुए इन दोहोमे प्रस्तुत किया है।

"कामकुंभ सुरतरु मणि, सब व्रत जीवन सार । कामित फलदायक सदा, भवदुःख भंजन हार ।।

तारागणमें उडुपति, सुरगणमे जिम इंद । विरति सकल मुख मंडना, जय जय ब्रह्म थिरिंद ।।"[53]

चरम फल मुक्ति प्रदाताके भावसे सर्व जीवोका परम हितस्वी 'विनय' गुणका स्वरूपालेखन देखे-

"गुण अनंतको कंद हे, विनय जीवन सिंगार । विनय मूल जिनधर्म हे, विनयिकं धन अवतार ।।"[54]

इस तरह विनयको सर्वाधिक-सर्वोत्कृष्ट-सर्वश्रेष्ठ दर्शाकर कविराज वर्तमान विश्वके जीवोको जीवनका श्रेयस्कर पथ प्रदर्शित करते है। 'विद्या विनयेन शोभते'- आदि नीति- वाक्योसे विनय और विद्याका संबंध स्पष्ट ही है। गुरुदेव भी अपूर्व-नव्य-ज्ञानाभ्यासको तरणि (सूर्य)की उपमा देकर उज्ज्वल जीवनयापनकी राह इंगित करते है- **"भवि वंदो अपूर्व ज्ञान तरणिने.....**

ज्ञान अपूर्व जब ही प्रकटे, शुद्ध करे चित्त धरणीने.....भवि....."[55]

जैनधर्ममे मोक्षमार्गके साधन रूपमे चार भावोंकी प्ररूपणा की गई है-दान-शील-तप-भाव। इनमे दानको प्रथम स्थान दिया गया क्योंकि दान-कर्मबंधनकी वृत्ति-प्रवृत्तिको रोकता है। दान-'धन-दान'-मूर्च्छा ममत्वादि राग सैन्यको और 'अभय दान' जीव मात्रके प्रति द्वेष-सैन्यको पराजित करनेमे मुख्य सेनापतिका कर्तव्य निभाता है। ऐसे दानका-सुपात्र दानका स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखते है-

"दान तो अभंग दीजे, मन धरी रंग ।

खान तो अमर अज सुख तो अभंग; गौतम रतन सम पात्र सुरंग.... दान तो

कनक समान मुनि, पात्र उतंग। देशविरति पात्र रौप्य मध्यम सुमंग......दान तो...."

सर्व जीवोके प्रति निर्व्याज-निर्हेतुक-निर्मल वात्सल्य-नीर-निधिको बहानेवाले, एकात महोपकारी देवाधिदेवके केवल दर्शन मात्रसे क्या असर होता है, उसका प्रसन्न भाव भरपूर वर्णन देखे-

"बढ्यो जी मम भाग, भाग, निरख जिन बिम्बको...

मिट गइ फिकरी करम अघ आज, जिन जस अखिया जगत शिरताज. .बढ्योजी....

सटक गइ ममता कुगुरु भइ लाज, पाखंड गड (गढ) खड़नी जिणद किरयाज.. "

भटक मरी जड़ता आनंद खिड्यो आज, जिणंद वामानंदको, आनम जगराज . .बढ्यो. .."[56]

यहाँ फिकर(चिंता)का मिटना, ममताका सटकना और जडताका भटकना ऐसी मार्दवताके साथ मधुर शैलीमे प्रस्तुत हुआ है कि परिणामत आनंद खिल उठता है।

ऐसे अरिहंत भगवंतके जन्म समय उनके पुण्यातिशयके कारण जीवोको जो सुखका अनुभव मिलता है वह अलौकिक होता है। महापापी जीव-जो नारकीमे बिना क्षणांतर निरंतर दुःख-वेदना और अंधकारमय भयंकर त्रास भुगतते है उनको भी क्षणिक सुख-प्रदाता श्री अरिहंतदेवोके जन्म महोत्सवके उल्लासपूर्वक प्रवाहित आनंदका वर्णन कविवरने अपनी 'स्नात्र पूजा' कृतिमे ठाठसे किया है-

"शुभ लग्ने जिन जनमिया, त्रिभुवन भयो प्रकाश । नारकको सुख उपनो, भविजन पूरे आश ।।"

अथवा "सुपन महोत्सव करो भवि रंगे, मुक्ति रमणी सुख लहो भवि चंगे ।"

या भवताप दूर करनेवाले, "जन्म महोत्सव गावो रे, भवताप निवारी......."

इसके अतिरिक्त ऐसे अनेक भावोंके निरूपण विविध स्तवन, स्तुति, तीर्थ वदनादि रचनाओमे, विशेषतया 'द्वादश भावना'के सज्झाय सग्रहमे जीवमात्रकी और प्रमुखतया मानव भवधारी जीवकी अनित्यता, अशरणता, एकत्व एव अन्यत्व अर्थात् 'एगोऽहं, नत्थि मे कोई', की भावना, आत्माके कर्मबधके कारण, सवर-निर्जरा रूप उपाय आदि द्वारा यथोचित रूपमे हुआ है। उनके ऐसे भाव भरपूर काव्यावतरणोको आज भी उतनी ही लगन और आत्मीयतासे अकेलेमे या समूहमे, एक बार और अनेकबार गाया जाता है और रसानदका अनुभव करके जीवनके चरम सत्योको, धर्म-राहोको और ... ... अगीकार करनेके प्रयत्न करते हुए अनेक भक्तजन भव साफल्यका लाभ ले रहे है।

दार्शनिकताः—हमे विदित ही है कि अक्षर-वर्ण एक एक अलग हो तब उसका कोई स्पष्ट अभिप्राय नही निकल सकता-वह निरर्थक-सा होता है, लेकिन वे ही वर्णोको एकाधिक रूपमे परस्पर सम्बन्धित कर दिया जाय तब अमूल्य शब्दोका निर्माण होता है और उन्हे सार्थकता प्राप्त होती है। जैसे मिट्टीका पिंड न आकर्षक होता है न मूल्यवान, पर किसी सिद्धहस्त कलाकारकी ऊँगलियोकी करामात उसे पिंडसे प्रतिमा बना देती है-लोग उन्हे प्रणिपात करते हैं-पूजा करते है-प्रति... भी करते है। वैसे ही वर्णो एव शब्दोका, विशिष्ट व्यक्ति द्वारा उपयुक्त एव विलक्षण सगठन या ग्रथन होने पर उनसे भरपूर भावयुक्त अद्भूत कृति साकार हो उठती है और चिरस्मरणीय बन जाती है।

ठीक उसी प्रकार श्री आत्मानदजी म सा की कृतिमे उणीके लिए कृपावान वह बावनी—'बावन वर्ण'-"उपदेश बावनी" बनकर भव्य जीवोंके लिए आत्म कल्याणार्थ पथप्रदर्शिका बन गयी है। जिसमे जीवके लिए विशेष उपादेय तत्त्वत्रयी—देव-गुरु-धर्म-तत्त्व—का उपयुक्त निरूपण हुआ है। उन्ही वर्णोसे व्युत्पन्न 'ॐ' बीजमत्र माना जाता है। सभी धर्मोमे उसे अग्रीम स्थान मिला है। भक्तहृदय कविराजके अतरमे भी उस प्रणवमत्र 'ॐ'कारका रव-गुजन-चिंतन-मनन अनवरत होता रहता था, न रोक सकती थी उसे दुन्यवी आधि-व्याधि-उपाधि, न हटा सकती थी लौकिक सुखशीलता-शान-शौकत और सिद्धिकी चकाचौंध। अ+अ+आ+उ+म वर्णोंसे बना ऐसा प्रणवमंत्र-ॐका स्वरूप, सत्त्व और सार एव उसके प्रति श्रद्धासे समर्पण-सुदर शैलीमे, सवैया इकतीसा छदमे बद्ध करके 'उपदेश बावनी'के मगलाचरणके रूपमे प्रस्तुत किया है।

"ॐ नीत पंच मीत समर समर चित्त अजर अमर हित नित चित्त धरीए;
सूरि उज्झा, मुनि पुज्झा, जानत अरथ गुज्झा मनमथ मथन कथन सु न ठरीए ।
बार आठ षट्तीस पणवीस सातबीस सत आठ गुण ईश माल बीच करीए;
ऐसो विभु ॐ कार बावन वरण सार आतम आधार पार तार मोक्ष वरीए।"-[18]

ॐ स्थित पच परमेष्ठि, अ=अरिहत, अ=अशरीरी (सिद्ध), आ=आचार्य, उ=उपाध्याय, म=मुनि-के गुण-बारह, आठ छत्तीस पचवीस और सत्ताईस = एकसौआठ—की स्तवना करके अनुपम आधार और मोक्ष दातारके रूपमे चित्रित किया गया है।

तत्पश्चात् 'ॐ'कार स्थित जैन दर्शनके अद्वितीय अनेकान्तवादकी उत्कृष्टताका परिचय करवाते हुए अष्टादश दूषण रहित और बारह गुण सहित, वशमे की हुई पाचो इन्द्रिय और निर्मल मनके धारक अरिहत देवके स्वरूप वर्णन द्वारा साकार वीतराग तथा सब कर्मरहित और अनत गुणसहित, अजर-अमर अज-अलख-अमल-अचल अशरीरी मुक्ति नगरीके सादि अनत निवासी सिद्ध परमात्माके स्वरूप वर्णन द्वारा निराकार वीतरागकी एकरूपताका एक ही मुक्तकमे अनुपम दर्शन किया है जिसके गुणगान करते करते 'समर अमरवर गनधर नगवर' थक जाते है।

"नथन करन पन हनन करम घन धरत अनघ मन मथन मदनको,
अजर अमर अज अलख अमल जस अचल परम पद धरत सदनको ।" [19]

इसी तरह नरेन्द्रो देवेन्द्रोके नमस्करणीय, भगवद भजनमे और कर्मवन कटनमे मग्न, जन-जनके

जीवनाधकारको दूर करनेवाले 'महामुनि पूरगुनी'के-गुणवत गुरुके स्वरूपका वर्णन संक्षिप्त फिर भी सुंदर बन पड़ा है-

"महा मुनि पूर गुनी निज गुन लेत चुनी मार धार मार धुनि बुनी सुख सेजको
ज्ञान ते निझर छार दाम धाम नार पार सातवीस गुण धार तारक सेहजको
पुग्गल भरम छोर नाता ताता जोर तोर आतम धरम जोर भये महातेजको
जग भ्रमजाल मान ज्ञान ध्यान तार दान सत्ताके सरूप आन मोक्षमें रहेन (ज) को।"[८०]

तत्त्वत्रयीके 'धर्मतत्त्व'—देव और गुरुके-अभिज्ञापनके पश्चात् तृतीय 'धर्मतत्त्व'का निरूपण विस्तृत रूपसे किया गया है। वितंडाके वर्धक विभिन्न वादोके इस युगमे जैन दर्शनने मुख्य दो वाद विश्वको अलौकिक उपहार रूप-वितंडासे मुक्तिके लिए-दिये हैं-(१) स्याद्वाद और (२) कर्मवाद। स्याद्वादकी रोशनी वर्तमान जीवनको आलोकित करती है जबकि कर्मवादकी अभूतपूर्व आभा भूत और भाविको उज्ज्वल बनाती है।

स्याद्वाद अर्थात् सापेक्ष दृष्टिसे सर्वांगिण निदर्शन। स्याद्वादकी दृष्टि भेदमे भी अभेदता, रूपमे भी रूपातीतता, शाश्वतमे भी अशाश्वतताका दर्शन करती है। व्यवहारसे जो रूप दृष्टिगत होता है निश्चयसे वही रूपातीत भी है, निश्चयसे जो शाश्वत है वह व्यवहारमें नाशवंत भी अनुभूत होता है। अत वर्तमानमे दृश्यमान ही सपूर्ण दर्शन नही है लेकिन इससे पूर्ववर्ती-परवर्ती-अनेकश दर्शनसे युक्त दृश्य ही सत्य और संपूर्ण दर्शन होता है। अन्य भी सापेक्षिक स्वरूपोकी कथंचित् रूपमे प्ररूपणा स्याद्वाद-'स्यात्'-के सहारे ही शक्य है। इसके सात, सातसौ आदि असख्य भेदोपभेद न्यायशास्त्रोमे विश्लेषित किये गये है-

"सिद्धमत स्याद्वाद कथन करत आद भंग के तरंग साद सात रूप भये हैं;
अनेकंत माने संत कथंचित् रूप ठंत मिथ्यामत सब हंत तत्त्व चीन लये हैं।
नित्यानित्य एकानेक सासतीन वीतीरेक भेदने अभेद टेक भव्याभव्य ठये है;
शुद्धाशुद्ध चेतन अचेतन मूरती-रूप रूपातीत उपचार परमकुं लये हैं ।" [८१]

स्याद्वाद-जैन दानशालाकी अनुपम बक्षिस है, स्याद्वाद सर्वांगिण शीलधर्मकी सुवास है, स्याद्वाद तात्त्विक तप साधनाका तवाजा (सम्मान) है, स्याद्वाद भगवतसे भावयुक्त भेट है। स्याद्वाद सर्व वितंडा-विवादोका दाना दुश्मन है तो सभी सापेक्षित नय-प्रमाणोंका जिगरी दोस्त है। ऐसे अद्भूत फिर भी गहन सिद्धान्तको ... रूप देकर अत्यन्त सहजता और सरलता युक्त भावप्रवण प्रवाहितताके साथ प्रस्तुत करना उत्तम कवित्त्व शक्तिको सूचित करता है। उस प्रकृष्ट शक्तिके कारणही 'स्यात्' शैली एव सप्तभगीसे निरूपित अनेकान्तके सिद्धान्त स्वरूपका रोचक वर्णन श्री मुनिसुव्रत स्वामीकी स्तवना करते करते गाया है-

"श्री मुनिसुव्रत हरिकुलचंदा, दुरनय पंथ नसायो।
स्याद्वाद रस गर्भित वानी, तत्त्व स्वरूप जनायो-सुन ज्ञानी
जिन वाणी रस पीजो अति सन्मानी......"

आगे एकातवादी कैसे और क्यो परस्पर उलझते है और उस उलझनको स्याद्वाद कैसे सुलझाता है उसका तादृश चितार वर्णित किया है-

"बंध मोक्ष एकांते मानी, मोक्ष जगत उछेदे। उभय नयात्मभेद गहीने तत्त्व पदार्थ वेदे ..... सुन ज्ञानी....
नित्य अनित्य एकान्त गहीने, अरथ क्रिया सब नासै। उभय स्वरूपे वस्तु विराजे, स्याद्वाद इम भासै. सुन ज्ञानी .
करता भुगता वाही ज दृष्टे, एकांते नहीं थावे, निश्चय शुद्ध नयात्म रूपे, कुण करता भुगतावे सुन ज्ञानी...[८२]

अन्य दर्शनकारोने ईश्वरको जगत्कर्ता और सुख-दुख फलप्रदाता बना दिया है । वे परमेश्वरको कलकित करते हैं। कर्मका कर्ता और भोक्ता-दोनो स्वय आत्मा ही है इसकी प्ररूपणा करके परमेश्वरकी वीतरागताको सिद्ध किया है, क्योकि जिसमें वीतरागता नही वह रागी-द्वेषी आत्मा कभी भगवद् स्वरूपी नही हो

सकते। इस तरह सभी दुर्नय वादियोको मुह तोड जवाब देते हुए गाते हैं-

"शुद्ध अशुद्ध नास अविनाशी, निरंजन निराकारो। स्याद्वाद मत सगरो नीको, दुर्नय पंथ निवारो..... सुन ज्ञानी... सप्तभंगी मत दायक जिनजी, एक अनुग्रह कीजो। आतम रूप जिसो तुम लाधो, सो सेवकको दीजो..... सुनज्ञानी.....[82]

इसके अतिरिक्त भी "सप्तभंगी गर्भित तुम वाणी, भव्य जीव सुखदायी...." अथवा **"तत्त्व सरधान पंचंगी संमत कस्यो, स्याद्वादे कर बैन साचो"** आदि अनेक स्थानोमे कविवरने स्याद्वादकी उत्कृष्टताके गुणगान किये हैं।

द्वितीय उपहार है 'कर्मवाद'। उसके भी अनेक स्वरूपोंके विविध प्रकारसे कदम कदम पर वर्णन किया है, यथा-कर्मससृति, कर्मका स्वरूप, कर्मका सान्निध्य (बध), कर्मका सत्त्व एव शक्ति (फल प्रदाता रूपमे), कर्मसे स्वायत्तता (मुक्तावस्था) आदि । 'कर्म' शब्दको सामान्यत व्यवहारमे क्रिया अथवा कार्यके अर्थ रूपमे प्रयुक्त किया जाता है। अन्य दर्शनकारोने भी कर्मको तकदीर-भाग्य-ईश्वरकृपादिके रूपमे स्वीकार किया है, लेकिन जैन दर्शनने उसका सम्बन्ध कार्मण वर्गणा—जो हमारे आस-पासके परिवेशमे अत्यन्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म पुद्गल स्कधोके रूपमे स्थित है-उनसे युक्त माना है।

सर्वज्ञ प्रणीत जैनधर्ममे कर्म-ससृतिका स्वरूप जिस प्रकार विवरित, वर्गीकृत एव विश्लेषित किया गया है, इतना विशद व व्यवस्थित निरूपण किसी भी धर्म या दर्शनमे, कही पर भी उपलब्ध नही होता है। कर्म सबधी अथेति-सर्वांगीण-स्वतत्र सवेक्षण रूपमे कर्मके प्रकार (प्रकृति), प्रभाव-प्रक्रियादि प्रभूत परिचर्चा कर्मग्रन्थ, कम्म-पयडी, पचसग्रह, प्रज्ञापनादि सूत्र ग्रन्थोमे विस्तृत रूपमे पायी जाती है।

कर्म स्वतत्र रूपसे तो जड होनेसे अक्रिय है, लेकिन आत्माकी राग-द्वेषादि परिणतिके कारण मिथ्यात्व-अविरति-प्रमाद-कषाय-योगके कारण सारासार प्रवर्तनसे, अस्थिर आत्म प्रदेशोमे, प्रकपन होने लगता है। वही चचलता एक आकर्षण उत्पन्न करती है जो उन भावानुरूप यथायोग्य कार्मण पुद्गलोको आकृष्ट करके क्षीर-नीरवत् आत्मसात कर लेती है जिसे 'कर्मबध' सज्ञा दी जाती है, जो स्वप्रकृत्यानुसार अपने स्वभावको यथासमय-यथाप्रमाण प्रदर्शित करते हुए जीवको अपने प्रभावसे वेष्टित कर लेते है। इसी भावनाको लेकर सूरिराजने राग 'भैरवीमे' जो सूर प्रवाहित किये हैं -

"आश्रव अति दुःख दाना रे चेतन आश्रव अति दुःखदाना......"

मुख्य रूपसे मन-वचन-कायाके तीन योगोसे, मैत्र्यादि भावना वासित जीव पुण्यानुबधी पुण्य (शुभकर्म) अथवा पाप पिडरूपी मिथ्यात्वादिसे ग्रस्त होने पर पापानुबधी शुभाशुभ कर्मोका उपार्जन करता रहता है। उसे नसीहत देते हुए कविराज आगे ललकारते है-

"योग, कषाय, परमादा, विरति-रहित अज्ञाना रे। मिथ्या दरसनी आरत रौद्री, पाप करे मुग्धाना रे...... चेतन...... आत्म मदा सुहंकर निर्मल, जिन वच अमृत पाना रे, करके जीवे सदा निरंगी, पामे पद निरवाना रे... चेतन.."[83]

इसी प्रक्रियाको विस्तृत रूपमे प्रस्तुत करते हुए *'बारह भावना स्वरूप'*का वर्णन करते है-

"हिंसा-झूठ-चोरी-गोरी-कोरीको रे रंग रस्यो; क्रोध-मान-माया-लोभ-क्षोभ घेरो देतु है।

राग-द्वेष ठग भेष, नारी राज भत्त देस कथन करन कर्म भ्रमका सहेतु है ।"

इस मुक्तककी इन प्रथम दो पक्तियोमे ही कर्मबधके पाच हेतु—पाच अव्रत, (<u>अविरति</u>), चार <u>कषाय</u>, राग-द्वेषादिकी परिणति रूप <u>मिथ्यात्व</u>, चार विकथा रूप <u>प्रमाद</u>, और <u>योगोका</u> अति सक्षेपमे-सूत्रात्मक शैलीमे लयबद्ध-वर्णानुप्रासादि अलकारकी सजावटके साथ प्रस्तुत करना सिद्ध कवित्व शक्तिका प्रमाण है। परवर्ती दो पक्तियोमे कर्मबधकी प्रक्रिया एव दु खप्राप्ति रूप कर्मफल वर्णित है

"चंचल तरंग अंग भामिनिके रंग चग उद्गत विहंग मन अति गर भेतु है।

मोहमें मगन जग आतम धरम ठग, चले जग मग जिये ऐसे दु ख लेतु है ।"[84]

इस कर्मबध प्रक्रियाके प्रधान हेतुभूत आत्माके जो परिणाम होते हैं, उसे जैनदर्शनमे शुभाशुभ लेश्याभिधानसे पहचाना जाता है, 'लेश्या'के छ प्रकार होते हैं—कृष्ण, नील, कापोत (तीन अशुभ) और तेजो, पद्म,

शुक्ल (तीन शुभ)। 'ध्यानस्वरूप'मे आचार्य प्रवरश्रीने आर्तध्यानी और रौद्रध्यानी योग्य तीन अशुभ एव धर्मध्यानी और शुक्लध्यानीके समीचीन तीन शुभ लेश्याकी प्ररूपणा इसप्रकार की है-

"राग द्वेष म भर्यो, आरतमें जीव पर्यो, बीज भयो जगतरु मन भयो आंध रे;

किसन कपोत नील लेसा भइ मध मही, उत्कृष्ट जगनमें एक ही न सांध रे।"

"पीत पउम ने सुक्क है, लेस्या तीन प्रधान। सुद्ध सुद्धतर सुद्धतम है उत्कट मंद कहान।।" (८५)

आत्मा द्वारा किये जानेवाले शुभाशुभ विचार-वाणी-वर्तन (मन-वचन-काया)के कारण कर्मपुद्‌गल-रज-मुख्य रूपसे आठ या प्रभेदसे एकसौ अट्ठावन-आत्माकी ओर एक निश्चित परिमाणमे आकृष्ट होती है, उसी समय उन तीनो योगोकी तीव्र या मदपरिणतिके कारण कौनसे कर्मोका परिपाक, कितने समय पश्चात्, कितने सत्त्व और शक्तिसे विपाक प्रदाता बनेगा-इन सभीका निर्धारण आत्मा स्वय करती है। इसे जैनदर्शन प्रदेशबध (परिमाण), प्रकृतिबध (प्रकार), स्थितिबध (काल) और अनुभाग या रसबध (तीव्रता-मदता) कहता है।

आचार्यश्रीजीके श्री अरनाथ भगवतके स्तवनमे इनका वर्णन इस तरह मिलता है-

"उदर त्रिलोक असंखमें, महरिद नीर निवास।

कठन सिवाल अछा दियो, करम पडल तस आठ।। सखि मोने देखण दे, अर जिनेश्वर चंद....." (८६)

ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीय और अतराय-चारघाति, और आयुष्य-नाम-गोत्र और वेदनीय-चार अघाति--इन आठोका वर्णन कविराजने माढ रागमे गाये एक पदमे सुदर ढगसे किया है, साथ ही साथ कौनसे कर्मक्षय होने पर जीवके कौनसे गुणका उद्‌घाटन होता है उसे भी प्रस्तुत करके आत्माके महत रूप प्रकटीकरणका आनद ले रहे है-

"दर्शन चरण अमरणको रे रूप रहित क्लिसंत...... अगुरु लघु गुण उलहस्यो रे, आतम शक्ति अनंत।

सत चिद आनंद आदि ले'रे, प्रगटयो रूप महंत.... कुमति शुं प्रीति भांगी रे..."(८७)

आत्माकी चौदह राजलोकमे चारो गति द्वारा अनादिकालसे चलती सफरसे जब उसे देव-गुरुकी अपार कृपासे थकान महसूस होती है और निर्वेदता प्राप्त होती है, तब उसे स्थिरताकी इच्छा होती है जिससे कर्म-मुक्तिकी तडप प्रबल बनती है। जैन दार्शनिक सिद्धान्तमे इस अध्यात्म स्वरूपको समझाते हुए षड्स्थानोकी प्ररूपणा की गई है-(१) आत्मा है, (२) आत्मा नित्य है। (३) आत्मा कर्मका कर्ता है, (४) आत्मा कर्मका भोक्ता है, (५) आत्माका मोक्ष होता है (६) आत्माके कर्ममुक्तिके उपाय भी है। कृपावत सर्वज्ञ भगवतोने केवलज्ञानसे प्राप्त की हुई वे युक्तियाँ सभी भव्य जीवोके लिए प्रसारित की और उन्हे ही पूर्वाचार्योने एव ज्ञानी महात्माओने अक्षरदेहमे गुम्फित की। सूरिचक्रचक्रवर्ती श्री आत्मानदजीम ने कर्मवादकी प्ररूपणा करते हुए अपने काव्योमे इन युक्तियोको शब्दशक्तिके माध्यम द्वारा गुंजित किया है। कषाय-मुक्तिके लिए कहते हैं-

"मोह कोह दोह लोह जटक पटक खोह, आतम अजान मान फेर कहां दावरी ?" ८८

मुक्ति रमणीके रसिक, दृढ निश्चयी साधकको कर्मदलसे मुक्त होकर जल जैसे निर्मल गुण प्राप्त करनेके लिए प्रेरणा देते हैं-

"जलके विमलगुण दलके करम फुन, हलके अटल धुन, अघजोर कसीए।

टलके सुधार धार, गलके मलिन भार, छलके न पुरतान, मोक्ष नार रमीए।

चलके सुज्ञान मग, छलके समर ठग मलके भरम जग जालमे न फसीए।

थलके वसनहार, खलके लगन टार, टलके कनक नार, आतम दरसीए।" ८९

चराचर विश्वमे मानवीके लिए काम-इच्छा, जो सर्व अनिष्ट और दुःख प्राप्तिकी जड है, उसके लिए चेतावनी देकर उससे छुटकारा पानेके लिए कहते हैं-

"नरको जनम बार बार न, विचार कर, रिदे शुद्ध ज्ञान धर परहर कामको।"

आगे फरमाते है- "इर नर पाप करी देत गुरु सिख खरी, मान लो ए, हित धरी, जनम विहातु है।
जोवन न नित रहे बाग गुल जाल मद्दे, आतम आनंद चहे, रामा गीत गातु है।
बके परनिंदा जेति तके पर रामा तेती थके पुन्य सेती फेर मूढ मुसकातु है।
अरे नर बोरे! तोकुं कहुं रे सचेत होरे पिंजरेकुं तोरे देख, पंखी उड जातु है।।" [10]

अखूट और अनंत श्रद्धासे अनादिके भवभ्रमणको रोकनेके लिए और सर्व कर्मक्षय करनेके लिए भवत्राता और मोक्षदाता–सर्वकर्मक्षायक–अनाथोके नाथको दीनतासे समग्रतया शरणागत बनकर करबद्ध प्रार्थना करते हुए गाते हैं

"त्राता धाता मोक्ष दाता, करता अनन्त शाता, वीर, धीर, गुण गाता तारो अब चेरेको।
तुम है महान मुनि, नाथन के नाथ गुणी; सेवुं निशदिन पुनी, जानो नाथ देरेको।
जैसो रूप आप धरो, तेसो मुज दान करो; अंतर न कुछ करो, फेर मोह घेरेको।
आतम सरण पर्यो, करतो अरज खरो; तेरे विन नाथ कोन, मेटे भव फेरेको?" [11]

इस प्रकार जैन कर्मविज्ञानको काव्यमय रूप देकर, उपदेशात्मक शैलीमे इस ससारसे मुक्त होनेके लिए अनेक युक्तियाँ सरल मुक्तक एव प्रगीतोमे प्रस्तुत की है;

ज्ञानके सपूर्ण स्वरूप एव केवली भगवतकी ज्ञान-ज्ञेयकी प्ररूपणाको कवि श्रेष्ठ श्री शुभवीरने श्री आदीश्वर भगवतकी स्तुतिमे इस प्रकार स्तवित किया है-

"ऋषभ जिनेश्वर केवल पामी, रयण सिंहासन ठायाजी,
अनभिलप्य अभिलप्य अनंता, भाग अनंत उच्चरायाजी" -अर्थात

सर्वज्ञ वीतराग भगवत भी वचनयोग और आयुष्य मर्यादाके कारण अनतानत द्रव्य-पदार्थ और भावोसे ज्ञात होनेके बावजूद उस ज्ञानके केवल अनतवे भागका ही उच्चारण अपनी आजीवन देशनाधारासे प्रवाहित कर सकते है, उसके अनतवे भागको गणधर भगवत धारण कर सकते हैं और धारण किये भावोके अनतवे भागको ही सूत्र-रचनारूप दे सकते हैं।

"तास अनंतमें–भागे–धारी, भाग अनंता सूत्रेजी .. "
"गणधर रचियां आगम पूजी, करिये जन्म पवित्रजी ।"

यहाँ विचारणीय यह है कि ऐसे अनतानत ज्ञान-रत्नाकरमे कौनसे विषय-तथ्य-स्वरूपादि भावरत्नोका अभाव हो सकता है। जीवन स्पर्शी सम्पूर्ण ज्ञानसे परिव्याप्त जैन वाङ्मयमे "उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त सत्" पदार्थो-जीवाजीवादि षटद्रव्योका अद्वितीय एव असीम विस्तार युक्त विवरण प्राप्त होता है। जिनका कविराजने अपने काव्योमे भी स्थान-स्थान पर निरूपण किया है। साथहीसाथ जीवराशिका भवभ्रमण जहाँ होता है उस चौदह राजलोकके स्वरूपाकार आदिका भी जो वर्णन किया है वह जैन भौगोलिक प्ररूपणाका परिचायक है। **"भवि लोक स्वरूप समर रे....**

कटि धरी हाथ चरण विस्तारी, नर आकृति चित धर रे।
षड् द्रव्य पूरण लोक समर ले, उपजत बिनसत थिर रे भवि
त्रिभुवन व्यापक लोक विराजे, पृथ्वी सात सुधर रे।
घनोदधि घन तनु वात वलि कलशे, चार ओर ही थिर रे भवि
वेत्रासन समो लोक अधो है, झल्लरी निभ मध्यवर रे।
मुरजाकार ही ऊर्ध्वलोक है, भाखे जग जिनवर रे, भवि " [12]

(जैन भूगोल अनुसार वर्तमान विश्व, चौदहराज रूप सिंधुमे एक बिंदु जितना स्थान रखता है। इनका विशेष-सचित्र-परिचय इस शोध प्रबधमे 'पर्व प्रथममे' करवाया गया है और जैन शास्त्र-ग्रन्थो क्षेत्र समास, लोक प्रकाशादिसे भी प्राप्त हो सकता है।)

इस प्रकार यहाँ आचार्य प्रवरश्रीके पद्योमे हृदय तंत्रीके भावोका भरपूर भक्ति आध्यात्मिक गाभीर्य

और ... रहस्योंकी त्रिवेणीका एव कलात्मक-भावात्म ... दार्शनिकताके पुट निदर्शन करवाते हुए भावपक्षका विस्तृत **ब्यौरा दिया गया। अब इनके पद्योमे कलापक्षके उभार-दर्शनका प्रयत्न है, जिसके अतर्गत इनके** काव्योमे अलकार, प्रतीक योजना **और बिम्ब विधानोके** सहारे **ध्वन्यात्मकता**, छद, रस-निष्पत्ति एव गेयता यु ... विविध राग-रागिनियोसे नवाजित अमर काव्यदेहका वर्णन किया जा रहा है। इससे उनके कवि कौशलका परिचय प्राप्त होगा।

काव्यमें अभिव्यंजना शिल्पः— काव्य, जीवनको प्रेरणा-प्रगति-प्रकाश प्रदाता है, जो सास्कृतिक जीवन शैलीका पोषक है' ऐसे उपकारक काव्यके कृतिकार द्वारा अनुभूत आतरिक गहन भावोका विश्व व्याप्त मनावेग और भावानुभूतियोके माध्यमसे, विविध सवेद्य रूपोमे कलात्मक प्रणयन-वही है अभिव्यजना शिल्प जिसके अतर्गत अलकार, प्रतीक, बिम्ब, छद, लय ताल, नाद सौदर्यता गेयतादि अभिव्यक्तिके अनेक विभिन्न अगोका विधान किया जाता है, और जिससे कृतिका प्रभाव प्राजलता एव प्रभुताकी वृद्धि होती है, साथ ही साथ काव्यके ... क्षमता-क्षेम और सौदर्यकी, अभीष्टार्थ पूर्तिके साथ सिद्धि होती है। अभीष्टार्थकी सम्प्रेषणीय क्षमता वृद्धिके लिए एव स्वानुभूत भावानुरूप साधर्म्य या वैधर्म्यके प्रतिपादनार्थ कवि नैसर्गिक मानवीय-मानवेतरादि सृष्टिकी वस्तु-व्यापार-विचार(भाव)-तथ्यादिका अवलम्बन लेकर काव्य रचना करता है।

इस विभिन्न रगयुक्त इन्द्रधनुषी आभासे भास्वरित काव्यमे प्रमुखत दो तत्त्व पाये जाते है-(१) कविके हृदयकी मूल भावानुभूति अथवा काव्यमे प्रतिपाद्य भाव जिसका वाच्य रूपमे या सूक्ष्म-स्थूल व्यग्य रूपमे सार्थ शब्द प्रयोग हुआ है-उसे प्रस्तुत कहा जा सकता है और (२) जिसके बल पर काव्यकी सौदर्यश्रीका सवर्धन होता है, जिसके सहयोगसे ही काव्यगत भाव, उत्कृष्ट रूपसे सवेदनशील आस्वादकको अखड-हार्दिक काव्यानदका आह्लाद प्रदान कर सकता है-उसे अप्रस्तुत कहा जा सकता है। आचार्य रामचद्र शुक्लजी इसी बातकी पुष्टि करते हुए लिखते है-**"काव्यमें कोई प्रस्तुत अवयव होना आवश्यक है तब उसके अतिरिक्त और जो कुछ रूपविधान होगा वह अप्रस्तुत होगा।"** ...

लेकिन हम देखते है कि इन 'प्रस्तुत' और 'अप्रस्तुत'को ही वर्तमान साहित्यिक परिभाषामे 'उपमेय' और 'उपमान'के रूपमे स्वीकृत कर लिया गया है जो काव्यके भावोकी तीव्र रसार्द्रता, प्रभविष्णुता, सप्रेषणीयता मार्मिक सुदरताको विवर्धनशील बनाते है। काव्यके प्रस्तुत और अप्रस्तुत-दोनो परस्पराश्रित होनेके कारण ही काव्यमे दृश्यमान मूर्तरूप-गुण (धर्म), विभिन्न भाव-प्रभावादिका साधर्म्य-वैधर्म्य या औचित्य-चमत्कारादिका उत्कर्ष प्राप्य है। अत कवि ऐसे ही उपमान चयनके साथ अपना बुद्धि सामर्थ्य और कल्पना वैभव जोडकर नित्य नूतन प्रयोगोको उपयुक्ततापूर्वक प्रवाहित करते रहते है।

अलंकार—काव्यमे अलकारका स्थान महत्त्वपूर्ण है यह निर्विवाद है, और ... महत्त्वके परिमाणमे भी उतने ही विवाद है, यह भी निर्विवाद है। अलकार काव्यको चरमोत्कर्ष रूप प्रदान करनेमे कितने परिमाणमे कारगर होते हैं, इसका निर्णय विभिन्न विद्वानो द्वारा भिन्न-भिन्न अभिप्रायके रूपमे प्राप्त होता है, फिर भी महत्त्व स्वीकार सभीने किया है। आश्चर्य इस बातका है कि अलकारका अक्षुण्ण महत्त्व स्वीकार करनेवाले अलकारवादी भी न इसका ठोस-सैद्धान्तिक विवेचन कर पाये न उसके मूल स्वरूपको स्पष्ट करनेके लिए कोई गभीर प्रयास ही किये। अत निश्चित हुआ कि अलकारका कार्य काव्यकी सजावट शोभा वृद्धि या पूर्ति करना है।

'अलकार' निहित शब्दयुग्ममे उसका अभिप्रेतार्थ समाविष्ट है यथा 'अल' अर्थात आभूषण और 'कार' अर्थात कर्ता-याने 'जो विभूषित करता है वह अलकार है'; यह तो हुई निर्युक्तिक पहचान। लेकिन वास्तवमे अलकार है क्या ?-अलकार है सुष्ठु अभिव्यजनाकी अथवा काव्योत्कर्षकी विभिन्न प्रणालिका वागेश्वरीके आभरण चमत्कारपूर्ण उक्ति वैचित्र्य', सुषमाभिव्यक्तिकी ललित भगिमा, मनोवैज्ञानिक भावसौदर्यके प्रसारक—सक्षेपमे वर्णनकी एक शैली मात्र है। सामान्यत सपूर्ण रूपमे सौदर्यका पर्यायवाची होना या काव्यकी शोभाकी अभिवृद्धि करना अथवा काव्य-भाषामे तथ्य-पदार्थ-सत्य और जीवनादिको रूपायित वा बिम्बित करनेकी

कला ही अलकारका प्रायोगिक रूप माना जा सकता है। जबकि व्युत्पत्ति रूपमे उसे व्या-…ायित कर तो -(१) 'अल करोति इति अलकार'–आचार्य भामहके विचारोसे अलकार ही काव्यमे सुदरता और रोचकता, रसात्मकता और जीवतता ला सकता है। अर्थात् काव्यमे अलकार अनिवार्यत आवश्यक हैं। इन विचारोके अनुगामी हम पाते हैं-दडी, वेदव्यास, जयदेव, नरेन्द्रप्रभ सूरिजी, केशव, गुलाबसिंह, मुर…ान, अप्पय दीक्षित, आचार्य रामचद्र शुक्ल, डॉ नगेन्द्र आदिको। (२) "अलक्रियते अनेनेति अलकार" –आचार्य मम्मटके खयालमे जिसके द्वारा विभूषित किया जाय वह अलकार है, अर्थात् अलकार, काव्य-सौंदर्य-वृद्धिके केवल साधन है-साध्य नही अथवा अलकार रसके पोषक, उत्कर्षक, उपकारक है। इन खयालातोके अनुवर्ती है-जैनाचार्य श्री हेमचद्र सूरिजी, विद्याधर, विश्वनाथ, चिन्तामणी भिखारीदास, देव आदि। (३) 'अलकरणम् इति अलकार' आचार्य आनन्दवर्धनके अभिमतसे रस या व्यग्यसे विपरित केवल काव्यको अलकृत करते हुए चमत्कृति उत्पन्न करनेवाला अलकार काव्यका गौण तत्त्व है। यही कारण है कि उन्होने काव्यमे अलकारको नितान्त आवश्यक नही माना है । इस धाराकी अनुमोदना की है–पडितराज जगन्नाथ-गोविददास-ग्वाल-लछीराम-अर्जुनदास केडिया-डॉ रामकुमार वर्मादिने।

अब प्रश्न उपस्थित यह होता है कि अलकार कब-कहॉ-क्यो प्रयोजित किये जाते है? इसके प्रत्युत्तरमे हम यह कह सकते है–अलकार किसी तथ्य-वस्तु या चरित्रके स्वरूपके लिए, प्रभावके स्पष्टीकरण या प्रकटीकरणके लिए, व्यग्य द्वारा प्रच्छन्न रूपमे निदा या प्रशसाको प्रकाशित करते समय, शाब्दिक ध्वनि या अर्थ चमत्कृतिके उद्भावनके प्रयोगमे, उपकारी बन सकते है, इस प्रकार अलकारसे कविता-रमणीकी बाह्य साजसज्जा आकर्षक रूप प्राप्त करती हैं। **"भाषाको गति, यति, चित्रात्मकता, सहजता, प्रभावोत्पादकता अलंकारोंसे मिलती है। यद्यपि यह बाहरी साधन हैं तथापि उनके पीछे अलंकृतिकारकी आत्माका उत्साह और ओज विद्यमान रहता है। बाह्य साधन होनेके कारण सर्व प्रथम इन पर दृष्टि जाती है"** [१]
अलकारोका पृथक्करण–व्यवहारके विभिन्न दृष्टिबिंदुओको केद्रस्थ रखते हुए जीवन सत्यके विविध रूपोको रूपायित करनेमे सहयोगी-अलकारोके, विद्वानो द्वारा अलग-अलग भेदोपभेद प्रस्तुत करनेकी चेष्टाये हुइ है। ऐसे प्रयत्नोका श्रीगणेश आचार्य भामहसे हुआ। लेकिन उनका वर्गीकरण वैज्ञानिक दृष्टिसे तर्कसगत नही माना जा सकता। तत्पश्चात् आचार्य रुय्यक द्वारा कुछ वैज्ञानिक ढगसे अलकारोको-सादृश्यगर्भ, विरोधमूलक, शृखलाबद्ध, न्यायमूलक तथा गूढ प्रतीतिमूलक–इन पॉच वर्गोमे वर्गीकृत किया गया।

दया, करुणा, कौतुक, विस्मय, जिज्ञासा उत्कठा, उद्वेग, विषाद, हर्षादि मनोवेगोको साधम्य-वैषम्य या औचित्य-चमत्कार-वक्रतादि रूपोमे विभिन्न अलकारोके माध्यमसे पेश किया जाता है। अत इनके आधार पर अलकारोका मनोवैज्ञानिक स्तरीय पृथक्करण किया जा सकता है-जो इस प्रकार निरूपित हो सकता है-साम्यमूलक, वैषम्यमूलक औचित्य मूलक, वक्रता मूलक, चमत्कार मूलक, अतिशय मूलक आदि।

इन्हे अधिकाधिक सुकरताके लिए मोटे तौर पर हम तीन विभागोमे विभाजित कर सकते है *शब्दालकार, अर्थालकार, उभयालकार*-किसी विशेष शब्द प्रयोग द्वारा काव्यमे चमत्कृति उत्पन्न करे और उस विशेष शब्दके रहने पर ही वह चमत्कार रहे उसे '*शब्दालकार*', अलकार सिद्ध करनेवाले शब्दके परिवर्तनके पश्चात भी वह चमत्कृति या काव्यानद बना रहे वह '*अर्थालकार*' और जो समान बलसे शब्द और अर्थ दोनो पर निर्भर रहता है वह '*उभयालकार*' कहा जाता है।

इन विभिन्न विभागीकरणके अभ्यासोपरान्त हम देख सकते है कि शब्दालकारोके वर्गीकरणमे तो समानता पायी जाती है, लेकिन अधिक मतभेद अर्थालकारोमे ही प्राप्त होते है। इनमे भी साधर्म्य या वैधर्म्यमूलक अलकारोमे प्राय एकमतता पायी जाती है और अन्यत्र भिन्नता। फिर भी, सभीमे अल्पाधिक मात्रामे मनोवैज्ञानिकता पायी जाती है। इन सभीमे विद्यानाथजी और विद्याधरजीका वर्गीकरण अधिक युक्तियुक्त माना जा सकता है। इन्होने अर्थालकारोको नव भागोमे विभक्त किया है-साधर्म्य मूलक, विरोधमूलक, अध्यवसाय मूलक, वाक्यन्यायमूलक, लोकव्यवहार मूलक, तर्कन्याय मूलक, शृखला-वैचित्र्यमूलक, अपह्नव मूलक

और विशेषण वैचित्र्यमूलक।

अब 'एकावली' मे विद्याधरजी द्वारा किया गया वर्गीकरण अत्र प्रस्तुत है-

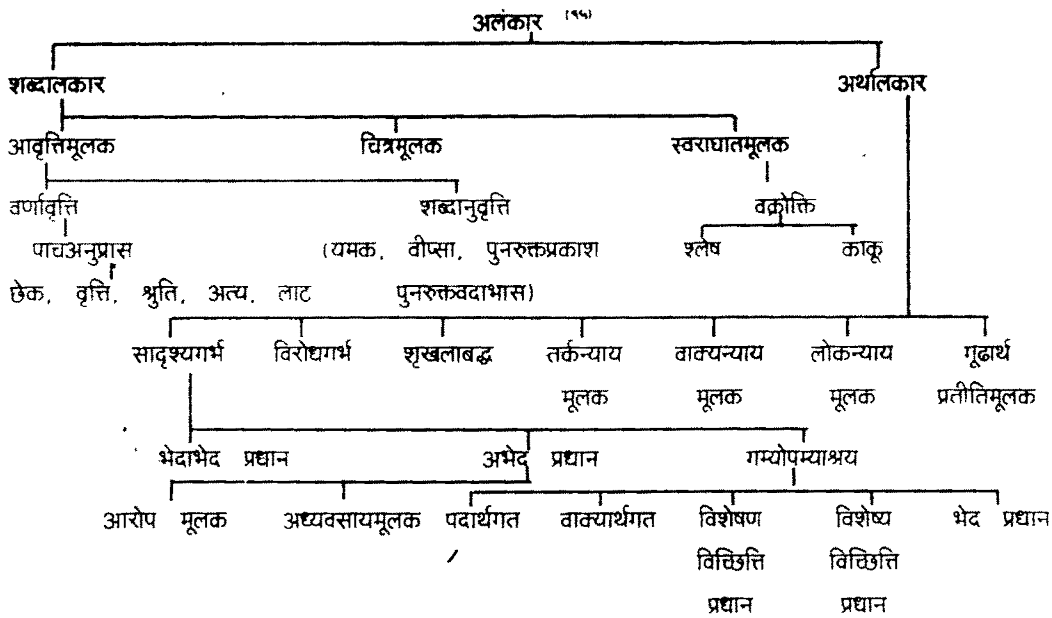

अब हम देखेगे कि कविसम्राट श्री आत्मानदजी म सा द्वारा अपनी काव्य रचनाओमे अलकारोका कितना और कैसा प्रयोग किया गया है। प्रथम शब्दालकार तदनन्तर अर्थालकारोका विवरण किया जायेगा। <u>शब्दानुप्रास-आवृत्तिमूलक</u>-जहॉं वर्णोकी या शब्दोंकी आवृत्ति होती है। <u>वर्णानुप्रास</u>-यहॉं स्वर या व्यजनोकी आवृत्ति-समानता दर्शायी जाती है। *'चिदानद घन'* परमात्माके मनमोहक- स्वरूपका वर्णन करते हुए स्तवना की है-

"चिदानंद घन अचर, अमूरत, सुरत, त्रिभुवन मानी"-हस्त लिखित-स्तवन-६७

<u>छेकानुप्रास</u>-आत्माको अनुकूल सिद्धि पाकर कुछ कमाई करनेके लिए प्रेरित करते हैं-

"सकल सिद्धि अनुकूल हुए जब, सम दम संयम पाई
अकषाय अति उज्ज्वल निर्मल, मदन कदन चित्त लाई,
बंदे कछु करले कमाई रे, जाते नरभव सफल कराई......"न. पूजा-४

यहॉं स, ल, म, अ, द, न, क आदिकी आवृत्ति हुई है। अत्यानुप्रास-'ई'कीभी आवृत्ति है।

<u>वृत्यानुप्रास</u>-भगवतके उपकार सर्वविदित ही है, इन्हीको ऐसी लयके साथ पेश किया है-

"मदन कदन शिवसदनके दाता, हरन करन दुःखदायी रे...
कर्म भर्म जग तिमिर हरनको, अजर अमर पददायी सखि री....."ह. लि. स्त. ११

इसमे 'न' की आवृत्ति हुई है साथ ही साथ 'हरन'से यहॉं 'यमक अलकार भी बनता है।

श्रुत्यानुप्रास-देशनाकी अमृतवर्षा करनेवाले अरिहत परमात्माकी विशिष्ट विशेषणो द्वारा स्तुति की गई है-

"शासनपति अरिहा नमो, धर्म धुरंधर धीर, देशना अमृत वर्षणी, निज वीरज वडवीर. "नवपद पूजा-१

और अब श्री सिद्ध भगवतके गुण स्वरूप-सिद्धके विशेषणो द्वारा, कठय 'अ' स्वरकी आवृत्ति करते हुए वर्णित हुआ है- **"अलख निरंजन अचर विभु, अक्षय अमर अमार**
महानंद पदवी वरी, अव्यय, अजर, उदार....."न. पू-२

अत्यानुप्रास- **"सुविधिजिन वंदना, पाप निकंदना, जगत आनंदना, मुक्ति दाता;**

करमदल खंडना, मदन विहंडना, धरम धुर मंडना, जगत त्राता।

अवर सहु वासना, छोर मन आसना, तेरी उपासना, रंग राता;

करो मुझ पालना, मान मद गालना, जगत उजालना, तेरा शाता।।".....चतु. जि. स्त. ९

वैसे तो, अत्यानुप्रासका प्रसाद इनके काव्यमे प्रायः सर्वत्र पाया जाता है।

यमक-श्रीनेमिनाथ भगवतके चचेरे-भाई-कृष्णजी जब भगवतके कहनेसे जानते हैं कि उन्हें नरकमे जाना पडेगा तब विह्वल होकर नरकसे मुक्तिका उपाय पूछते है। उसके प्रत्युत्तरमे सर्वज्ञ परमात्मा उन्हे सान्त्वना देते हुए कहते है कि आप भी नरकगमन पश्चात भावी तीर्थकर 'अमम' नामसे बनोगे। इसीको कविवरने, ममत्वरहित-'अमम जिन'का आलेखन किया है-

"अमम"अमम" जिन रूप सरिसो, जिनवर पद उपजाई".......ह. लि. स्त-११

"भामंडल पूंठे प्रभु दर्सण, तम मिथ्यातम नावे रे"....ह. लि. स्त-२९

"आतम आनंद चिदघन स्वामी, शांति, शांति कर तार हो"....ह. लि. स्त-३३

"परमानंद कंद प्रभु पारस, पारस तो सही।

तुम निज आतमको कनक करण, टुक फरसो तो सही"....आ. वि. स्त.-पृ १०५

"शीतल जिनवर नाम, शीतल सेवक कीजिए

शीतल आतम रूप, शीतल भाव धरीजिए ।"..... च. वि. स्त.-१०

इस प्रकार जगह जगह पर सभंग एवं अभग यमकके चमकार प्राप्त होते है।

<u>वीप्सा</u>-आदरणीय-शुभ-शुद्धादि भावोके प्रभावकी वृद्धि हेतु किसी शब्दकी पुनरावृत्ति करने पर यह अलकार बनता है। परोपकारी गुरुदेव जलमे कमलकी तरह तैरनेके लिए और पाप-पकको झाड कर समाधि प्राप्त करके निर्मद एव निर्ममत्व धारण करनेके लिए शीख देते हैं। यहॉं तैरना, झाडना, वरना आदिकी प्रभावोत्पादकता इनकी अनेकबार आवृत्ति करके की गई है-

"काम भोग जल दूर तजीने, उर्ध्व कमल जिम तर रे तर रे तर रे तर रे,

मुनिजन अर्चन शुद्ध मन कर रे, कर रे कर रे कर रे कर रे....

अंग अष्ट चित्त जोग समाधि, पाप पंक सब झर रे झर रे झर रे झर रे....

शुद्ध स्वरूप रमणता रंगी, निर्मम निर्मद वर रे वर रे वर रे वर रे...." न. पू.-५

<u>पुनरुक्त प्रकाश</u>-भावको रुचिकर बनानेके लिए यहॉं कविराजने 'सुमति' शब्दकी दो बार आवृत्ति की है। इसे पुनरुक्ति भी कहते है-**"सुमति सुमति समता रस सागर, आगर ज्ञान भरिनो ।**

आतम रूप सुमति संग प्रगटे, सम दम दान वरिनो....आ. वि. स्त. पृ-८३

यहॉं 'सुमति सग'से आत्मरूप प्रगटनेमे सहोक्ति अलकार भी दृष्टव्य है।

<u>पुनरुक्तवदाभास</u>-जिनशासनके अनेकातको उजागर करते हुए अहिंसाकी प्रधानता गाते हैं। *'काम-वासना'* रूप भावकी हिंसा करके कैसे करुणा भावको प्राप्त करना है इसे ध्वनित किया है-

"करुणा रससे धरी शुभ फानस, मरत न जेम पतंग।

तिम जिन पूजन मिले चित्त दीपक, जरत है समर पतंग रे"....अ. प्र पूजा-दीपक पूजा

<u>चित्रमूलक</u>-अपरिग्रही निर्मम-अकाम केवलज्ञान दिवाकर-विश्व रूपी टहनी पर पुष्प सदृश ससारमे ज्ञान परिमल प्रसारक-नवनव भवकी प्रीतिपात्र-राजमतिका दीनतासे उद्धार करके ससार पार कराकर प्रसन्न करनेवाले-बाल ब्रह्मचारी परमात्मा श्रीनेमिनाथजीके रूप-गुणका जो शब्द-चित्र अकित हुआ है वह अपने आपमे स्पष्ट व सपूर्ण प्रभावशाली बन पडा है।

"टहके सुमन जेम, महके सुवास तेम, जहके रतन हेम, ममताकुं मारी है,

दहके मदनवन, करके नगन तन, गहके केवल धन, आस वास हारी हैं।

कहके सुज्ञान भान, लहके अमर थान, गहके अखर तान, आतम उदारी है।

चहके उवार दीन, राजमति पार कीन, ऐसे संत ईश प्रभु बाल ब्रह्मचारी है।" उ. बा.-३४

अर्थालंकारः--सादृश्यमूल--भेदाभेद प्रधान--उपमा-

<u>पूर्णोपमा</u>-- **"मन बच तन कर पदकज सेवो भृंग परे लपटानी"....ह. लि. स्त-६५**

"वदन चंद ज्यूं शीतल सोहे, अमृतरस मय बानी"..... ह. लि. स्त-६६

"अश्वसेन वामाके नंदन, चंदन सम प्रभु तप्त बुझारी"..... चतु. जिन स्त-२३

"राजकुमर सरिसा गणचिंतक, आचारज पद जोगी"...... श्री नवपद पूजा-चौथी

<u>लुप्तोपमा</u>- **"त्रिशलानंदन सुरतरु जगमें, वांछित फल पावेजी".....-ह लि स्त-४५**

यहाँ त्रिशलानदन (भ महावीरजीको) कल्पवृक्षकी उपमा दी है, लेकिन वाचक शब्दका लोप है इसलिए वाचक लुप्तोपमाका प्रयोग हुआ है।

<u>मालोपमा</u>--भगवतको उपमेय बनाकर विभिन्न उपमानोकी माला-सी गूथी गई है-

"प्रभु अविचल ज्योति रे, निज गुण रंग रली। प्रभु त्रिभुवनचंदा रे, तामस दूर टली।
जग शांतिके दाता रे, अघ मव दूर दली। प्रभु दीन दयाला रे, मुझ मन आश फली।" ह.लि.स्त ७१

इसीका एक और सुदर प्रयोग है- **"दीन दयाल करुणानिधि स्वामी, वर्धमान महावीर भलेरो।**
श्रमण, सुहंकर, दुःखहर नामी, ज्ञातपुत्र भ्रमभूत दलेरो....." आ.वि.स्त.७८

<u>उपमेयोपमा</u>--परमात्माकी वाणीके जो गुण-भेद है उन्हे सुदर ढगसे उपमेय-उपमान-परस्पर उपमेयोपमान वनाकर जाल जैसे गूथा है- **"उत्सर्ग अपवाद अपवाद उत्सर्ग उत्सर्ग अपवाद मन धार लीजो,**
अति उत्सर्ग उत्सर्ग है जैनमें, अति अपवाद अपवाद कीजो।" - च.जि.स्त-९.

<u>अनन्वय</u>--सर्व जीव समान होते हैं-यह है साम्यवाद, लेकिन वैषम्य कहां है? कर्मके कारण। 'कर्म हठे'-सर्वकर्मरहित--सर्व जीव एक समान ही होते हैं । इसे श्रीशखेश्वर पार्श्वनाथके स्तवनमें अनन्वय अलकारके प्रयोग द्वारा--जहाँ उपमेय उपमान एक ही हो--दर्शाया गया है-

"जब करम कटा और भरम फटा, तुं और नही मैं और नहीं"। - आ.वि.स्त.-पृ.७४

"जब राग कटे और द्वेष मिटे, तुं और नहीं मैं और नहीं"। - आ.वि.स्त.-पृ.७४

<u>प्रतीप</u>- **"पंचभद्रनो त्याग करीने, पचमी गति द्यो सारजी, निर्ग्रंथपणाने त्यागो प्राणी, निर्ग्रंथ आदर सारजी".....ह.लि.स्त.३०**

अभेदप्रधान--आरोपमूल-*रूपक*--**"अब हुं निरासो कदी ही न थावुं, कल्पवृक्ष प्रभु पायो रे...." ह.लि.स्त.१०**

<u>अभेद रूपक</u>-यहाँ परमात्मा रूपी आरीसे भवभ्रमण रूपी वनको काटने-खत्म करनेके स्वरूपमे प्रस्तुत किया है। **"अश्वसेन वामाजीको नंदन, भववन काटनको प्रभु आरी"..... ह.लि.स्त. २८.**

"अब तुम नाम प्रभंजन प्रगटयो, मोह अभ्र छय कीनो"..... आ.वि.स्त.-५.

"परगुन बकरीके संग चरके, हुंहुं नाम धरायो:
जिनवर सिंघको नाद सुण्यो जब, आतम सिंघ सुहायो..." आ.वि.स्त.-पृ.१००

<u>साग रूपक</u>-जहाँ उपमेयके अवयवो सहित उपमानके अवयवोकी एकरूपता दिखाई जाती है।

"चंद्रवदन मुख तिमिर हरे जग, करुणा रस दृग भरे मकरंद
नीलांबुज देखी मन मधुकर, गुजे तूंही तूंही नाद करंद ..
कनक वरण तनु भवि मन मोहे, मोहे जीते सुरगण वृद
मुखथी अमृत रसकस पीके, शिखीवत् भविजन नाच करंद
श्री वीरजिन दर्शन नयनानंद.. आ वि स्त. पृ.६१

परपरित रूपक- **"करम कुधातुसे चेतन विगर्यो, मानें सबहि एकंगी रे।**
सम्यग् दरसन चरण तापसे, दाहे करम सरंगी रे...."(बा.भा.स.५.)

तद्रुप रूपक- **"तुम गुण कमल भ्रमर मन मेरो, उड़त नहीं है उड़ाई।**

तृषत मनुज अमृत रस चाखी, रुचसे तप्त बुझाई।। तारो॑ व जिन. स्त २१

"वचन सुधारस तुम जग प्रगटे, गटके भविजन लाल हो...." ह. लि. स्त. ३१

उल्लेख–यहाँ पाठक-उपाध्यायके 'निमित्त भेदाश्रयी' विभिन्न गुणोंका वर्णन किया गया है।

"पाठक पद सुख चैन देन, वच अमीरस भीनो रे..... स्वपर रूप विकासी **चंद, अनुभव सुरतरु केरो कंद.....**

कुमति पंथ तम नाशक सूर, सुमति कंद वर्धन घनपूर.

सरस बचन जिम तंत्री वीन, निज गुण सब चीनो रे."बी.स्था.पृ.५

अध्यवसाय मूल-उत्प्रेक्षा–**"अश्वसेन वामाजीको नंदन, चंदन रस सम सारे रे।**

अनियाली तोरी अंबुज अखियां, **करुणारस** भरे नारे रे आ.वि.स्त पृ. ५९

फलोत्प्रेक्षा– तपत मिटी तुम **वचनामृतसे, नासे जन्म मरण** दुःख फद.

अक्ष परे तुम दरस करीने, पर्तक्ष मानु हुं जिनचंद. ..आ.वि.स्त.पृ. ७०

यहाँ जिनचदके प्रत्यक्ष दर्शनके अफलमे 'अक्ष परे दरस करके प्रत्यक्ष दर्शनकी सभावना की है

प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा–वाचक शब्दके अभावसे यह उत्प्रेक्षा अलकार बनता है-यथा-

सावन घटा घनघोर गरजी, नेमवाणी रस भरी। अपछंद निंदक संघके, तिन जान सिर विजरी परी।।

सत्ता सुभूमि भव्यजनकी, अंश अंशे सब ठरी। अब आस पुन्य अंकुरकी, मनमोद सहियां फिर खरी।।

च.जिन स्त.२२

यहाँ श्रीनेमजिनकी वाणीमे 'सावनकी घटाकी घनघोर गर्जना' आदिकी सभावनामे सशयवाचक शब्द लुप्त है।

अतिशयोक्ति-ऐसा कभी हो नही सकता कि क्रोड सागरोपम वर्ष (असखयात वर्ष) पर्यत गुण गाने पर भी वह अधूरे रहे लेकिन कविराजने परमात्माके अलौकिक-अनत गुणगानके माहात्म्यको प्रदर्शित करनेके लिए लोक व्यवहार विरुद्ध भासे ऐसी स्तवना की है-

"कोडि वदन कोडि जीभसें रे, कोडि सागर पर्यंत

गुण गाउँ तेरे भक्तिशुं रे, तो तुम रिण को न अंत.. ..." आ.वि.स्त.पृ.६१

सम्बन्धातिशयोक्ति–**"जनम जनममें माता रोई, आंसूनासंख कराना रे**

होय अधिक ते सब सागरथी, अज हुं चेत अज्ञाना रे....." ह.लि.स्त. -२५

असम्बन्धातिशयोक्ति-**"धारो 'चरण' नहीं मिले मोल, रंक-राज्य पद दायी ..." नव.पूजा.-८.**

यहाँ 'चरण' शब्दमे 'श्लेष' अलकार भी बनता है 'चरण' याने पॉव और 'चरण' याने सम्यक चारित्र। दोनो ही मूल्य चूकाने पर भी नही मिलते है। वैसे तो मोल देनेसे सबकुछ प्राप्त करनेका जो सम्बन्ध उसे 'न मिलना' वर्णित करके असम्बन्धकी कल्पना की गई है।

क्रिया साम्य मूल (गम्योपम्याश्रय):–पदार्थगतः दीपक-('तुल्ययोगिता')–विभिन्न आत्माओंकी इस ससार परिभ्रमण क्रिया रूप **धर्मको** प्रस्तुत करके कविने यह अलकार नियोजित किया है।

"ऊँच नीच रंक कंक कीटने पतंग ढंक, ढोर मोर नानाविध रूपको धरतु है ।

श्रृंगधार गजाकार, वाज वाजी नराकार, पृथ्वी तेज वात वार (वारि) रचना रचतु है" उ.बा १८

माला दीपक–**"अठारे सहस्त्र शिलांग धार, जयणायुत अचल आचार पार;**

नव विध गुप्तिसे ब्रह्मकार, आतम उजार भववन दव दीना।।

जे द्वादशविध तप करत चंग, दिन दिन शुद्ध संयम चढ़त रंग

मोनाकी परे धरे परिख चंग, चित्तमें अभंग संजम रस लीना।।" नव पूजा ५

यहाँ 'अभग सयम रस प्राप्ति'के लिए साधु जीवनकी विविध चर्या क्रियामे एक धर्म क्रियारूप धर्मकी समानता प्रदर्शित की गई है।

देहली दीपक -एक ही क्रिया दोनो वाक्योके बीच आती है तब यह अलकार बनता है-केवलज्ञान रूपी दीपकके प्रकाशमे दो क्रियाओका निषेध किया गया है-

"पवन पतंग न धूमकी रेखा, केवल दीप उजासे रे....." अष्ट प्र.पूजा - दीपकपूजा-

वाक्यार्थगतः— *प्रतिवस्तूपमा-*"तें तार्यो प्रभु मोह को रे, हरी भवसागर पीर।

ग्यान नयन मुजे तैं दीये रे, करुणा रसमय वीर ।।" .... आ.वि.स्त.पृ. ६१

यहाँ 'तारना', 'हरना' और 'ज्ञान नयन देना'-तीनोमें एकही क्रियाधर्म दर्शाया गया है और 'मुझे' एवं 'मोहको'-दोनों शब्द भी एकार्थी है। अतः प्रतिवस्तूपमा अलंकार बनता है।

दृष्टान्त- "तुं मुझ साहिब वैद्य धन्वंतरी, कर्म रोग मोह काट

रत्नत्रयी पथ मुझ मन मानीयो रे, दीजो सुखनो थाट।"चतु. जिन स्त.-१७

यहाँ अरिहत देवका रत्नत्रयी रूप पथ्य देकर मोहनीय कर्मरोगको नष्ट करनेवाले धन्वतरी वैद्यके साथ समानधर्मा बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव प्रस्फुटित होता है। इसलिए दृष्टान्त' अलकार बनता है। वैसे ही मिथ्यात्व रूपी लोहेको जिनवाणीके रसायण रससे सम्यक्त्व रूपी सुवर्ण बनानेमे भी समानधर्मी ब्रिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव झलकता है- "नाम रसायण सहु जग भासे, मर्म न जान कांइ री।

जिनवाणी रस कनक करणको, मिथ्या लोह गमाइ...." चतु. जिनस्त.-८.

उदाहरण--दृष्टान्तमे वाचक शब्द आने पर उसे 'उदाहरण' अलंकार कहते हैं-

"बंधन गये तुंब ज्युं जलमें, छिनक में उर्ध हि आवे,

आतम निर्मल सुध पद पामी, जनम मरण मिटावे रे...." आ.वि.स्त.पृ.-५८

"छिनमें बिगर गयो, क्या है मूढ मान गयो, पानीमें पतासा तैसा, तनका तमाशा है"- उप.बा.५८.

निदर्शना--जहाँ वाक्य या पदार्थमे असंभव संबधके लिए उपमाकी कल्पना की जाती है--जैसे, भववनको जलानेवाली साधना रूपी अग्निकी साक्षीमें मनभावन सिद्धिवधूके साथ साधकके लग्न चित्रको चित्रित किया है, जिसके आनद प्रदर्शनके लिए मगल 'तूर्यादि' वाद्य बज रहे है । 'सिद्धिवधू' कोई नारी तो है नही। लेकिन मोक्षके सबल भावको पेश करनेके लिए असबध सबधकी कल्पना की गई है । यथा -

"उदे भयो पुन पूर नर देह भूरि नूर, बाजत आनंद तूर मंगल कहाये है ।

भववन सघन दगधकर अगन ज्युं सिद्धि वधु लगन सुनत मन भाये है ।" उ.बा.१३

विशेषण विच्छित्ति प्रदान --*समासोक्ति*--कर्मसे दीन बने हुएको सासारिक शक्तियाँ (वाचिक शक्ति) सुवर्ण सदृश शुद्धात्माको भी डुबा देनेका सामर्थ्य रखती हैं तो परमात्माके चित्तका सग करनेकी इच्छावाले-लोहककण ऊपर आये हुएके क्या हाल होगे?-इस पक्तिमे सासारिक शक्ति रूप अप्रस्तुतकी स्फुरणा की गई है-

"एक इच्छक प्रभु लोह कंकण ले, भूपति अंग संगकार,

वचन युक्तिसे हेम डूबोए, है एह शक्ति संसार।" ह. लि. स्त-२७

परिकर--"शिववधू वशीकरणको नीकी, तीनों रतन धरी।

आतम आनंद रसकी दाता, वीर जिने दान करी.... वीर जिने दीनी माने एक जरी।" आ.वि.स्त.पृ-६९

'परमात्माके दान' रूपी विशेष्य-'जडीबुट्टी'को वशीकरण करनेवाली, नीकी, तीन रत्नधारी, आत्माको आनदरसकी दाता आदि विशेषणो द्वारा प्रकट किया है। अत यहाँ परिकर अलकार बनता है। इसके अतिरिक्त 'आतम' शब्द पर श्लेष है(१) आत्माके आनदकी दाता और (२) श्री आत्मानदजी म को आनदरस प्रदान करनेवाली-'धरी', 'जरी', 'करी' आदिमे अत्यानुप्रास भी वर्णित है।

श्लेष-- "शुचितनु वदन वसन धरी, भरे सुगंध विशाल।

कनक कलश गधोदके, आणि भाव विशाल ।।" सत्रह भेदी पूजा-१

यहाँ 'आणि'-गुजराती भाषानुसार 'लाकर' और सस्कृत भाषानुसार 'कोटि' अर्थसे श्लेषका चमत्कार अनुभूत होता है जबकि 'विशालमे' मे यमक और पदानुवृत्ति अलकार बनते है।

"ज्ञान अपूरव जबहि प्रगटे, शुद्ध करे चित्त धरणीने" बीस स्थानक पूजा-१८

यहाँ 'अपूरव' अर्थात् अभिनव-नूतन और 'अपूरव' अर्थात् अद्‌भूत; अपूर्व याने केवलज्ञान इस प्रकार अपूरवके विभिन्न अर्थग्राही श्लेष अलंकार बनता है।

"हुं तो नाथ ही नाथ पुकार रही, कुमता जर जार ही जार रही"-आ.वि.स्त-९४

यहाँ अनादि कालसे वृद्ध बनी कुमतिके जार-पुरुषको जलाना और वही कुमतिकी बिछायी हुई जालको जलाकर खत्म करनेकी बातको 'जार' शब्दसे श्लेषित की गई है।

अर्थांतरन्यास–जहाँ विशेषसे सामान्यका अथवा सामान्यसे विशेषका साधर्म्य या वैधर्म्यके द्वारा समर्थन होता है-

"मन मेला,तनका अति उजला,बगलेके सा तोल। घोडा काठका होसा न पूरे,बाजे न फूटा ढोल..."ह.लि.स्त१७

यहाँ काठका घोडा, फूटा ढोल और बगले से, मनके मैले और तनके उजले व्यक्तिके मानसिक भावोका चित्रण किया गया है।

पर्यायोक्ति- **"शील सेना जिन, निज तन धारो; मदन अरि जिन पकड पछार्यो; धन धन नेम कुमार....ह.लि.स्त२६**

यहाँ बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथकी धन्यता-महानताको, शीलसेनाधारी सेनापतिके कामदेव रूप महान शत्रुको पकड कर पछाडने रूप विशेष भावोंसे व्यक्त किया

व्याजस्तुति- **"जो दायक समरथ नहि तो, कहो कुण मांगन जाये।**

त्रिभुवन कल्पतरु में जाच्यो, कहो किम निष्फल थायें !"....ह.लि.स्त-२२

यहाँ प्रथम परमात्मा की निंदा-"देनेमे समर्थ नही"-कहकर फिर कहा है कि, 'नही, तुम तो कल्पतरु हो तो फिर मेरी याचना कैसे निष्फल हो सकती है?' अर्थात् आप समर्थ ही हो।

भेदप्रधान:--- *व्यतिरेक*–**"चंद्रकिरण जस उज्ज्वल तेरो, निर्मल-ज्योत सवाइ री.... चतु. जिन स्त-८**

यहाँ 'चद्र किरणकी उज्ज्वलता' उपमानकी अपेक्षा 'यशकी निर्मल ज्योत'को 'सवाइ' कह कर उपमानका अपकर्ष दिखाया गया है इसलिए व्यतिरेक अलकार बनता है।

विरोधगर्भ:—*विरोधाभास*-**"घृत विन पूरे ज्योति अखंडित, वर्तिक मल न विकासे रे**

दीप जयंकर चिद् घन संगी, केवल जगत प्रकासे रे....अष्ट.प्र.पूजा-४

यहाँ बिना घृत-वर्तिकके जयकर दीपककी ज्योतिका विरोध आभासित है यह बात जब केवलज्योत, जगत प्रकाशकी बात सुनते ही प्रकट होकर विरोधका परिहार कर देती है।

विभावना-जहाँ कार्य-कारणान्तरकी कल्पना की जाती है-यथा-

"यह संसार सुही सावरजो, संबल देख तु भायो।

चाखन लाग्यो रुइसी उड गइ, हाथ कछुय न आयो रे मन...." आ.वि.स्त-पद

असगति-जहाँ जो कार्य-प्रवृत्ति होनी चाहिए उससे विरुद्ध कार्य-प्रवृत्ति हो तब यह अलकार बनता है-यथा-

"प्रवचन अमृत जलधर बरसे, भवि मन अधिक उल्लास रे;

कुमति कुपंथ अंधजन जे ते, सूकत जैसे जवास रे।" बीस स्था. पू-३

यहाँ भव्य जीवोको उल्लास देनेवाली अमृतमयी प्रवचन धारासे कुमतिधारी कुपथी, जो अभी अज्ञानाधकारमे भटकते है-प्रफुल्लित होनेके बदले सूखने लगे-अत असगति अलकार बना ।

सम–कारणके अनुकूल जहाँ कार्यका वर्णन किया जाता है, वहाँ 'सम' अलकार होता है

"ओइक बरस शत आयुमान मान सत्, सोवत विहात आध लेत है विभावरी,

तत बाल-खेल ख्याल अरध हरत, प्रौढ़, आध, व्याध, रोग सोग सेव कांता भावरी ।

उदग तरंग रंग, योवन अनंग संग, सुखकी लगन लगे, भई मति बावरी,

मोह कोह दोह लोह, जटक-पटक खोह, आतम अजान मान, फेर कहाँ दावरी ?" उ.बा.२१

यहाँ आत्मा शत वर्षायुष्यको कैसे पागलकी भाँति व्यर्थ व्यतीत कर देती है, इसका यथार्थ वर्णन करके श्री आत्मानजी म निजात्माको सचेत करते हैं कि, ऐसा मानव भव प्राप्तिका अवसर बारबार कहाँ

प्राप्त होगा ? अर्थात् प्राप्त अवसरका समुचित उपयोग कर ले ।

शृंखलाबद्धः— *एकावली*—**जहाँ वस्तुओंके ग्रहण और त्याग** की एक **श्रेणि बन** जाती **है-**

"बिना सरधानके ज्ञान **नहीं होत है, ज्ञान बिन** त्याग **नहीं होत साचो।**

त्याग बिन करमका नास **नहीं होत है, करम नासे बिना धरम काचो।" चतु.**जिन.स्त-९

यहाँ सच्चे धर्म तक **पहुँचनेके** लिए **कर्मनाश**, त्याग, ज्ञान-प्राप्ति, **और शुद्धश्रद्धानकी** एक **श्रेणि** बनाई गई है अत यहाँ एकावली अलकार बनता है।

वाक्य न्यायमूलः— *यथासख्य*—क्रमश कहे हुए पदार्थोका उसी क्रमसे जहाँ अन्वय होता है।

"चार अवस्था तुम तन शोभे, बाल तरुण मुनि मोक्ष सोहंदा

मोद हर्ष तन ध्यान प्रदाता, मूढ मति नहीं भेद लहंदा...

यहाँ श्री श्रेयासनाथ जिनेश्वरकी स्तवना करते हुए परमात्माके जीवनकी चार अवस्थाओका चार भावोमे अन्वय करके कविवरने 'यथासख्य' अलकार रचा है।

पर्याय—एक ही आधेयका अनेक आधारोमे होना पर्याय रूपमे वर्णित होता है।-

"उपादान तुं ही, सिद्ध रूप तूंही, निमित्त खरो सिद्धचक्र मुही।

जब ध्याता, ध्येय, अरु ध्यान मिले, सिद्ध और **नहीं तुं** और **नहीं...."नव.पू.२**

यहाँ आत्मा रूपी आधेयको विभिन्न आधारोमे वर्णित किया गया है और अतमे निष्कर्ष रूप आत्मा ही सिद्ध स्वरूपी है यह सिद्ध किया है।—**"मंगल पूजा सुरतरु कंद...**

सिद्धि आठ आनंद प्रपंचे, आठ करमका काटे फंद....

आठों मद भये छिनकर्मे दूरे, पूरे अड गुण, गये **सब** धंद...

आठ प्रवचन सुधा रस प्रगटे, सूरि संपदा **अति** ही **लहंद...." सत्रह भेदी पूजा-१३**

यहाँ 'अष्टमगलकी पूजा'को विविध भावोमे पर्यवसित किया गया है।

लोकन्यायमूलकः— *प्रत्यनीक*—शत्रुको जीतनेमे असमर्थ होनेके कारण उसके पक्षवालोसे वैर निकालनेको 'प्रत्यनीक' अलकार कहते है। प्रत्यनीकका अर्थ ही है प्रतिवादी।

"दुग्ध सिंधुरस अमृत चाखीं, स्याद्वाद सुखदायी रे।

झहरपान अब कोन करत है, दुर्नय पंथ नसायां री।.... चाह लगी...." आ.वि.स्त.पृ-८८

प्रतीप—जहाँ विपरीतता दिखाई देती है।

"पंचभद्रनो त्याग करीने, पंचमी गति द्यो सारजी।

निर्ग्रंथपणाने त्यागो प्राणी, निर्ग्रंथ आदर सारजी।।"....ह.लि स्त.-३०

गूढार्थप्रतीतिमूलः— *स्वाभावोक्ति*—मनुष्यकी किसी भी अवस्था विशेषका स्वाभाविक रूपसे वर्णन मिलता हो-

"आवो नेम, सुख चैन करो, दुःख काहे दिखावो रे.

विरहे तुमरो अति ही कठन, सह न सकू मन एक छिन,

जगत लगा सब हाँसी करन, मत छोडीने जावो रे.. .आवो....

करुणासिंधु नाम धरन, सुन अनाथके नाथ जिन,

रुदन करुं तुम चरन पडन, टूक दया दिल लावो रे ..आवो...

अडभव सुंदर प्रीत करी, अब कयुं उलटी रीत धरी,

'आतम' हित जग लाज टली, **निज भवन** सधावो रे आवो...." **ह.लि.स्त-१४**

यहाँ भगवान श्रीनेमिनाथजीकी लग्न-मडपसे वापस जानेकी बात सुनकर विरहिणी 'राजुल'की हृदयद्रावक विनतीका वर्णन स्वाभाविक ढगसे फिर भी मार्मिक रूपमे किया गया है।

अलकार सृष्टिका पर्यालोचन करते हुए हम देख सकते है कि कविराज श्री आत्मानदजी म ने काव्योद्यानमे प्राय सर्व प्रकारके पुष्पालकारोकी परिमल प्रसारित की है। फिर भी, प्रमुख रूपसे अनुप्रास,

यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, दृष्टान्त, आदिकी नैसर्गिक-प्रभूत परिमाणमे सजावट आह्लाददायी बन पड़ी है। अन्त्यानुप्रासका शृंगार तो प्रत्येक रचनाको सजाता रहा है। परंपरित उपमेयोपमानोंको भी नव्य साज-सिंगारका ओप मिला है। यही कारण है कि अलकारोकी प्रचुरता होने पर भी वे काव्यको बोझिल बनानेके प्रत्युत उसे लचीला बनानेमे कामयाब हुए हैं।

अतः प्रत्यवेक्षाके निष्कर्ष रूपमें हम कह सकते हैं कि जन्मजात कवित्वशक्ति प्राप्त कवि सम्राट श्री आत्मानदजी महाराजजीके काव्योमें कदम कदम पर अनायास ही एक सिद्ध कवि सदृश अलकारोके सफल प्रयोग झलकते हैं। प्राय सभी रचनाओमे हमे केवल चमत्कृति ही नही, अपितु अर्थ गाभीर्य, आत्मानुभूतिकी सरस एव सहज-प्रवाहितताके साथ प्रौढ भावाभिव्यक्ति, काव्य सौंदर्यकी परिमार्जित सुष्ठु सज्जादिका परिचय प्राप्त होता है।

अब हम इनके प्रतीक विधानसे व्युत्पन्न सौंदर्यका अवगाहन करेगे।

प्रतीक विधानः— भगवद्‌भक्तिमे लयलीन भाविक भक्तके अतरमे व्युत्पन्न अनेकानेक विशिष्ट भावात्मक रहस्योको, अत्यल्प शब्दोमे अभिव्यक्त करनेवाले प्रतीक, अलकारोके समान ही काव्योत्कर्ष और सौंदर्य प्रदाता होते है, जो बाह्याभ्यतर मनके सुषुप्त एव अवरुद्ध भाव या भावनाओको जाग्रत करते हैं और उलझनमय, गूढ, दुर्बोध रहस्योका सुलझे हुए सरल एव स्पष्ट अभिभावन कराते है। इन भक्त कवियोकी आध्यात्मिक चितन-मनन-निदिध्यासनकी पार्श्वभूमिको संवेदनात्मक एव प्रतीतिगम्य बनानेके लिए जिन आलबनोका सहयोग प्राप्त होता है उनकी पहचान प्रतीकाभिधानसे करायी जाती है। अर्थात् पदार्थ या प्राणीके रूप-गुण या व्यापार, भाव और भावनादिके सादृश्य या प्रत्यक्षीकरणके लिए जिन-जिन पदार्थ-क्रिया-नैसर्गिक भावना या सास्कृतिक गुण-व्यापारोंका व्यवहार उनके प्रतिनिधि रूपमे किया जाता है- वे ही प्रतीक कहलाते हैं। "सादृश्यके अभेदत्वका घनीभूत रूप प्रतीक है। अत रूपकका अत्यधिक रूढ—सर्व सामान्य स्वरूप जिसमे अप्रस्तुतसे ही काम चलता है—प्रतीकके रूपमे हमारे सामने आता है?"[96]

ये प्रतीक, विवक्षित या चिंतित विषयानुरूप एव भाव आदोलनोसे आविर्भूत अनेक रूपोमे प्राप्त होते है-यथा- लौकिक-लोकोत्तर-जैविक-प्राकृतिक, शाब्दिक-ध्वन्यात्मक करुणामय- आनदोर्मिमय आदि-जिनके सहारे साधारण-सी दिखनेवाली उक्ति विशिष्ट वैचित्र्ययुक्त, मार्मिक या चमत्कृत बन जाती है। अनुभूतिकी सूक्ष्म गहराई जिसके अंतरको आदोलित कर चूकी है, वे सफलतासे प्रभावक प्रतीकोकी सयोजनासे अपनी रसीली रचनाको सहज ही मे सजा देते हैं।

आध्यात्मिक क्षेत्रमे इन प्रतीकोका सहयोग दो प्रकारकी भावाभिव्यक्तिके लिए विशेषत किया जाता है। प्रथम-परमात्माका स्वरूप-परमात्मासे आत्माकी भेदाभेद अवस्थाके स्पदन, परमात्मासे विरहावस्थाकी करुण--असह्य वेदनाभिव्यक्ति, परमात्मासे मिलनकी उत्कट उत्कठा और उसके लिए सत्प्रयत्न, परमात्म स्वरूप प्राप्तिकी परम-उल्लासमय-परिपूर्ण-"सत् चित् आनदकी अनुभूति" आदिकी अभिव्यक्ति, और द्वितीय-तात्त्विक अथवा दार्शनिक-जिसके अतर्गत (तत्त्वत्रय) देव-गुरु-धर्मका स्वरूप, कर्मस्वरूप भवभ्रमण स्वरूप, लोकस्वरूप, ससारस्वरूप, मुक्तिस्वरूप, मुक्ति प्राप्तिके मार्ग आदिकी भावाभिव्यक्तियोका सन्निवेश किया जाता है।

इनके अतिरिक्त लौकिक या सामाजिक जीवन व्यवहारके विभिन्न भावव्यापारोको प्रभावित करनेवाले एव सात्त्विक-असात्त्विक वृत्तियोको भी विशेष चारुत्वके साथ व्यवहृत करनेमे सहयोगी क्रिया-कलापोकी श्रेणिको स्पर्शनेवाले प्रतीकोका भी काव्यमे समाहार किया जाता है जो साहित्य सृष्टिकी प्रारम्भिक अवस्थासे अद्यावधि विभिन्न स्वरूपोमे अक्षुण्ण रूपसे प्रयुक्त होते आ रहे है।

लेकिन साम्प्रत साहित्य सृजनमे जो प्रतीकवादी काव्यधाराकी सज्ञा प्राप्त काव्योका आविष्कार हुआ-वे यथार्थवादी प्रवृत्तियोकी आदर्शवादी प्रतिक्रियाके रूपमे ही आविर्भूत हुए, जिससे जीव और जीवनकी यथातथ्य प्ररूपणाके प्रत्युत प्रतीकात्मक सदर्भ या अलकारोके माध्यमसे स्वप्निल आदर्शोंका प्रकटीकरण होने लगा। इनके अनुसार कोई भी रचना भावात्मक, विषयपरक, प्रतीकात्मक, सश्लिष्ट,

आलकारिक होनी चाहिए। अतः प्रतीकवाद अतर्गत स्थूल भाव चित्रणोका झुकाव गूढ रहस्यमय सूक्ष्मताकी ओर ढलकर अस्पष्टवादिताके स्वरूपमें विकसित हुआ। यही कारण है कि पाश्चात्य-नव्य प्रतीकवादी काव्य रहस्यमयी प्रवृत्तिके कारण अस्पष्टता, अनिश्चितता, सादृश्यताको लेकर गुणादिका केवल बौद्धिक सकत पर आधारित सक्षिप्त साकेतिकता, प्रभाव क्षमताकी शिथिलता आदिके दर्शन होते हैं। "इसमें सदेह नहीं कि इसका उपयोग अधिक व्यापक भूमि पर नही हो सकता।" फिर भी यथाशक्य 'विस्तृत एव स्वस्थ प्रयोगोंके आधार पर इन प्रतीकवादी रचनाओंमे प्रयुक्त पौराणिक, शास्त्रीय, दार्शनिक, सास्कृतिक, प्राकृतिक, वैयक्तिक (मानवीय), सामाजिक, राष्ट्रीय, ऐतिहासिक, सख्यापरक जीवन व्यवहार एव व्यापारादिको स्पर्शित प्रतीक सवेदनाकी गहराई और तीव्रताको सक्षेपमे प्रस्तुत कर सकते हैं।

अब श्रीआत्मानदजी महाराजजीके 'काव्य'नभाचलमे'प्रतीक'सितारोकी चमककी चारुताका आह्लाद प्राप्त करेगे, जिन्होने प्राय सभी प्रकारके प्रतीकोका सफल प्रयोग किया है।

शास्त्रीय-(आगमिक)-जैनागमो एव पूर्वाचार्यो विरचित जैनशास्त्रोमे अध्यात्म विषयक विस्तृत निरूपण अतर्गत परमात्माका स्वरूप, आत्माका बाह्याभ्यन्तर स्वरूप, आराधनाकी भिन्न भिन्न प्रणालियॉं व शैलियॉं, देवगुरु एवं धर्म-कर्मादिका विवरण तो प्राप्त होता ही है, साथ ही साथ आत्मासे सलग्न चितन-मनन-निदिध्यासन; ध्यान एव योगादिमे सहयोगी आलम्बन या निमित्तरूप षट्द्रव्य, चौदह राजलोक एव तत्र स्थित जीवोके कार्य-कलाप, कला-व्यापार, क्रिया-विधान और प्राप्तव्य लक्ष्यकेन्द्र-मोक्ष आदिका भी विशद विवेचन मिलता है; जिन्हे कविवरश्रीने प्रतीक विधानके रूपमे अपनी रचनामे भावोको सबल बनानेके लिए उपयोगमे लिए है।

'बारह भावना स्वरूप'मे कविश्रीने जैन-भूगोल अर्थात् चौदह राजलोकके स्वरूप (सस्थान) का वर्णन किया है- **"जामाधार नराकार भामरी करत यार लोकाकार रूप धार कह्या करतार रे....**

"आदि अंत नही संत स्वयं सिद्धरूप ए तो षट् द्रव्य वास एही आपत उचारने।"

नवतत्त्व संग्रह-बारह भावना स्वरूप पृ.१६३

परमात्माकी प्रतिमा पूजनीय होनेके आगमिक प्रमाण प्रस्तुत करते है-

"उववाइ, राइपसेणीकार, जिवाभिगम पन्नति धार, जिन प्रतिमाका कथनसार, मुक्ति फल पावे रे...." ह.लि.स्त--२४

मूल, निर्युक्ति, वृत्ति चूर्णी, भाष्य,-टीका-यह पूर्वाचार्य विरचित जैन शास्त्रोकी पचांगी कही जाती है। यह जैन दर्शनका निधि है, जिसके आधार बल पर अग-उपाग रूप मूलागमोमे निरूपित कथन स्पष्टतया प्रस्तुत किया जाता है।-

"पंच अंग ताली सद्गुरुकी, प्रवचन संघ निधान रे।"

"आतम अनुभव रतन सुहंकर, अचर अनघ पद खान रे।" ... बीस स्था. पृ.-३

परमात्माकी काउसग्ग मुद्रा स्वरूपके लिए-

"काउसग मुद्रा धीर ध्यानमें, आसन सहज सुथिर रे

तप तेजे दीपे दया दरियो, त्रिभुवन बंधु सुगिर रे. " श्री.न पू.-५.

कविकी अतरग अनुभूतियॉं ऐसे उपमा या रूपकात्मक प्रतीक माध्यमो द्वारा अभिव्यक्ति पाती है कि जो सामान्यतया विपर्यय सकेतोमे प्रस्तुत होनेके कारण तार्किक दृष्टि-बिंदुसे न युक्तियुक्त लगती है न बुद्धिग्राह्य हो सकती है, साधारण जन-समाजको जो कल्पनाकी तरगे भासित होती हैं या लोक व्यवहारमे जिसे कुछ उटपटाग मनोसाम्राज्यकी उद्भावनाये मानी जाती हैं-उन रचनाओका 'उलटवॉंसी' नामाभिधान किया जाता है। भारतीय भक्ति-परक काव्योमे इन विपर्याय या विपरीतार्थ प्रतीकोके आधिकारिक-प्रयोग कबीरकी साखियो या पदोमे मिलते हैं। जिनसे उन्होने गभीर एव रहस्यमयी

मनोद्‌भावनाओको अप्रत्याशित रूपमे अभिव्यजित किया है। इस काव्य प्रकार-'उलटवाँसी'-का उपयुक्त एव स्वस्थतापूर्वक उपयोग करके आचार्यश्रीने अंतरके भाव संकेतोंकी सफल अभिव्यक्ति की है-यथा-

"दुषम कालमें कुमति अंधेरो, प्रगट करे सब चोरी।

श्री चिदानंद विदारोने, कुमति जो मेरी।"....बीस स्था. पूजा-१९

तथा-"भावरोगकी औषधि,अमृत सिंचनहार;भवभय ताप निवारणी,अरिहंत पद फलकार।"..बीस स्था.पूजा-३.

एवं-"मुक्तिवधुकी पत्रिका, वरणी श्रीजिनदेव; सुधी तत्त्व समजे सही, मूढ न जाने भेव"। स.भे.पू.-७.

जगत स्वरूपको स्पष्ट करते हुए 'बारह भावना सज्झाय' मे गाते है-

"रचना इसकी किन ही न कीनी, नही धार्यो किन कर रे:

स्वयं सिद्ध निराधार लोक ये, गगन रहयो ही अधर रे...भवि लोकस्वरूप समर रे सम." सज्झाय-१०

जैन दर्शनके गूढ रहस्यमयी सिद्धान्तोको व्यक्त करते हुए श्री महावीर स्वामीके स्तवनमे गाते हैं'

'**कुमति कुटल अनादिकी वैरन, देखत तुरत डरी; चारों ही दासी पूत भयंकर, हुए भसम जरी।।**

बावीस कुमति पूत हठिले, नाठे मदसें गरी; दोउ सुभट जर मूरसें नासे, छूट्यो मदन मरी।।

शिववधू वशीकरणको नीकी,तीनां रत्न धरी;आतम आनंदरसकी दाता,वीरप्रभु दान करी।।".आ.वि.स्त.पृ-६९

पौराणिक प्रतीक-पौराणिक पात्रोके चित्रण-माध्यमसे आत्माको सीख देते हुए जो प्रयोग हुए है-

"द्वारामती नाथ निके, सकल जगत टीके, हलधर भ्रात जीके, सेवे बहुरान है।

हाटक प्राकार करी रतनको शीश जरी, शोभत अमरपुरी, सा जन महान रे।

पुन बीते हाथ रीते, संपत विपत लीते, हाय साद रोत कीते जर्यो निज थान रे।

सोग भरे छोर चरे, वनमें विलाप करे, आतम सीयानो, काको करता गुमान रे।" (उ.बा.४६.)

सास्कृतिक- "राय बेल नव मालिका कुंद मोगर तिलक जाति मचकुंद

केतकी दमनक सरस रंग, चंपक रसभीनो रे....

इत्यादिक शुभ फूल रसाल, घर विरचे मनरंजन लाल

जाली झरोखा चितरी शाल, सुर मंडप कीनो रे....

गुच्छ झूमखां लम्बा सार, चंदुआ तोरण मनोहार, इंद्रभुवनको रंगधार....स.भे.पू.११

यहाँ परमात्माको बिराजित करनेके लिए जो गृह सजाते है, इसका वर्णन किया गया है। भारतीय सस्कृतिका प्रमुख त्यौहार 'होली',रग डालने और फाग खेलनेका-मनभावन त्यौहार । इसके आलबनसे सुरीश्वरजी मोह-सुभटसे लडकर श्रुतज्ञानको हृदयस्थ करनेके अरमान अभिव्यक्त करते है-

"अपने रंगमें रंग दे हेरी, हेरी लाला, अपने रंगमें रंग दे....

सात हि विकथा दूर निवारी, मोह सुभट संग जंग दे।

श्रुतके सातों अंग रंगीले, मुझ हृदयमें टंग दे....हेरी...." बीस स्था. पूजा ४

"सील सज तनु केसरी, पिचकारीयाँ शुभ भावना ज्ञान मादल ताल सम रस, राग सुध गुण गावना,

धूर झडी करमकी, सब सांग सगरें त्यागीया, नेम आतमरामका, धरिध्यान शिवमग लागीया"''

प्राकृतिक- "चंद वदन भवि जन मन मोहे, तूं त्रिभूवन शिरताजजी" ह.लि.स्त-४७

"जूं पारस लोहता खंडे,कनक सुध रूपकुं मंडे ऐसो जिनराज तु दाता,हीवे क्यूं ढील है त्राता।".ह.लि.स्त-९

'एह ससार पलाल पूजको,दूर कर्णको अग्नि झारो, यह ससार विकट अटवीमे,काम-क्रोध-दु:ख देनहि भारो". ह लि.स्त २८

"यह दुनिया है धुंध पसारो, आपने स्वरूप फलूंगी" ह.लि.स्त.४२

"भये जगमें सुरतरु कंदा, के सिमरो धर्मन आनंदा" ...ह लि.स्त-६२

"रंग पतंग जो फीका छिनमें, मूरख क्यों भरमाया"....ह.लि.स्त-६४

"तीन छत्र प्रभुके पर कहकर त्रिभुवन स्वामी जनावे रे चामर कहत है नीचे झुक कर,उर्ध्वगति तुम जावे रे

भामंडल पूंठे प्रभु दर्शण, तम मिथ्यातम नावे रे...." ह.लि.स्त. २९

"रंभा रमण अनंग संग बहु केल कराये संध्या रंग बिरंग देख छिनमें बिरलाये...." चतु. जिन स्त.१३
"दीन हीन अब देख, करो बेग सहाइ, चातक ज्यूं घनघोर,सोर निज आतम लाइ.." चतु. जिन स्त.१३

"तुम गुण कमल भ्रमर मन मेरो, उडत नहीं है उडाइ।

तृषत मनुज अमृतरस चाखी, रुचसे तप्त बुसाई।".... चतु. जिन. स्त.१३

"जिम तरु फूले चैत भृंग, आतम संतोषे अधिक रंग।

बिन पीड़े ले मकरंद चंग, होके आनंद गोचर कर लीना।"....नव. पू.-५

इस पूजा काव्यमे मुनि भगवतको गौचरी ग्रहण करनेकी विधि-तरुफूल-मकरद और चैतभृगके प्रतीकोसे दर्शायी है.तो साधु कर्मक्षयकी साधनामे कैसा है-इसे योद्धाके प्रतीक द्वारा पेश किया है-

"कषाय टार पण इंद्री रोध, षट्काय पार मुनि शुद्ध बोध;

संजम सतरे मन शुद्ध सोध, मचे रणमें जोध. मनमें नहीं दीना।"....न.पू.५.

"प्रवचन अमृत जलधर बरसे, भविमन अधिक उल्लास रे।

कुमति कुपंथ अंधजन जे ते, सूकत जैसे जवास रे....।" बीसस्था. पूजा-३

अतर्चक्षुके उद्घाटनसे मनकी स्थिरताके अनुभवको झूलेके प्रतीकसे प्रस्तुत किया है-

"हरि विक्रम नृप सेवना,अंतर दृग खोला; आतम अनुभव रंगमें,मिटे मनका झोला ।"..बीसस्था. पूजा-९
"कुमति घूक सब अंध हुए हैं,भूले जडमति करणीने भवि वंदो अपूर्व ज्ञान तरणिने"...बीसस्था.पूजा-१८

"तपगच्छ गगनमें दिनमणि सरिसे, विजय सिह विरंगी ।" बीसस्था.पूजा-कलश

आत्म स्वरूपके लिए राकाके पूर्ण चद्रकी प्रतीक योजना-

"चिदानंद सुखकंद, राकाके पूरण चंद, आत्म सरुप मेरे, तूं ही निज भूप है...." नव.सं.पृ.१६२

वैयक्तिक (मानवीय)–परमात्माके साथ अभेदता या सख्यभावके अथवा पतिरूपके माधुर्य गुण भरपूर भावको मानवीय प्रतीकोके माध्यमसे प्रस्तुत किया है -

"जो तुम जोगी, हुं मैं जोगन, चरण सेवुं केरी सुध तन मन

नास करुंसब ही भव वनं, मोहि पार उतारोजी....नेम हमको न विसारोजी" । ह.लि.स्त-१९.

कर्म क्षयकी उत्कट तमन्नाने परमात्माको धन्वतरी वैद्यका रूप दे दिया है -

"तुं मुझ साहिब वैद्य धन्वंतरी रे.../..."अथवा

"जो रोगी होत है तनमें,तो वैद्यो धारत मनमें,हुं रोगी,वैद्य तुम पूरो,करो रोग सब चकचूरो ।".....ह.लि.स्त.९

परमात्माके प्रति अविहड प्रीतको जताते हुए गुनगुनाते है -

"जिस पद्मणी मन पिउ वसै, निर्धनीया हो मन धन की प्रीत;

मधूकर केतकी मन बसै, जिम साजन हो विरही जन चित्त ।

अनंत जिणंद सु प्रीतड़ी, नीकी लागी हो, अमृत रस जेम"....चतु.जिन.स्त.-१४

शुद्ध सम्यक्त्वरहित जा हीन-क्रिया-धर्म आदि जीवको उपकारी नही होते उसका स्वरूप वर्णित है

"सुंदर सिंगार करे, बार बार मोती भरे, पति बिन फीकी नीकी, निंदा करे लोक रे ।

वदन रदन सित, दृग विन फीके नित, पग रीते रित कित भूषनके थोक रे....

तप जप ज्ञान ध्यान मान सन्मान सब, सम्यक् दरस बिन जाने सब फोक रे" ..द्वा.भा.पृ.१६४

"महागोपण सत्थ निर्यामक बलि महा माहना रे". . नवपदपूजा - प्रथम पूजा

जीवन व्यवहार एव व्यापाराधारित प्रतीक–

"याम सुमति तप कुठारे,करम छिल्लक छेलीया जारके सब मदन वन घन.मोखमारग फैलीया ।" ..चतु... जिन.स्त २२

"तेल तिल संग जैसे अगनि वसत संग रंग है पतग अग एक नाही भिन्न हैं,....

दधि नेह, अभ्र मेह, फूलमें सुगंध जेह, देह गेह घित एह एक नही भिन्न है,

आतम सरूप धाया, पुग्गलकी छोर माया, आपने सदन आया, पाया सब भिन्न है ।" बा.भा.१६२

"जैमे हटबाले मीले, मीलके बीछर जात, तैसे जग आतम संजोगमान विलना
कौन वीर मीत तेरो, जाको तू करत हेरो, रयेन बसेरो तेरो, फेर नहीं मिलना"...उ.बा.-३९.
"ढोरवत रीत घरी, खान पान तान करी, पूरन उदर भरी, भार नित वह्यो है,
पीत अनगल नीर, करत न पर पीर, रहत अधीर कहा शोध नही लह्यो है ।
काल बिन पल तोल, भक्षाभक्ष खात घोल, हरत करत होल पाप राच रह्यो है ।
शींग पूंछ दाढी मूंछ, बात न विशेष कुछ, आतम निहार उछ, मोटारूप कह्यो है ।"...उ.बा.३७

विवेकहीन मनुष्यके व्यवहारको किस कदर जानवरकी श्रेणिमे पहुँचाया है । और अब, मनुष्य जीवनमे ब्रह्मचर्यका स्वरूप वर्णित कियां है, उसे देखे,

"नव वाडें शुद्ध ब्रह्म आराधे, अजर अमर तुं अलख री ।
औदारिक सुर कामजालसे, अपने आपको रख री ।
सिंहादिक पशु भय सब नासे, ब्रह्मचर्य रस चख री ।" ....बीस स्था. पूजा-१२

जीवके भवभ्रमणको नाट्यगृह एव नाटकके प्रतीकात्मक ढगमें पेश किया है -

"गति चारु ए नाटक थानक,विषम कर्म गति भूप,लाख चौरासी सांग धारावी,निरखे नव नव रूप..." ह.लि.स्त.२०

साधनाके क्षेत्रमे 'योग'का अद्‌भूत महत्व गाया है । अपने 'योग-शास्त्र'मे श्री हेमचद्राचार्यजी म.ने अष्टांग योगका अद्‌भूत निरूपण किया है, जिसे गुरुदेवने इस प्रकार अपने काव्यमे गूथा है -

"अंग अष्ट चित्त जोग समाधि, पाप पंक सब झर रे झर रे...." नवपद पूजा-५
"योग असंख्य ही जिनवर भाषित, नवपद मुख्य करी...." नपपद पूजा-९
"मन वच कायाके व्यापारे, योग यही मुख माना रे...... बारह भावना सज्झाय-आश्रव भावना
"जोग समाधिमें वसे, ध्यान काल है सोय; दिवस घरी के कालको, ताते नियम न कोय ।
सोवत बैठत तिष्ठते, ध्यान सवि विघ होय; तीन जोग थिरता करो, आसन नियम न कोय
विषम प्रासाद पर, चरवेको मन कर, रजुकुं पकर नर सुखसे चरतु हैं ।
ऐसो 'धर्मध्यान'सौध चरवेको भयो बोध, वाचनादि 'आलंबन'नाम जुं कहतु है ।" ...ध्या.स्व.१७८

इस प्रकार 'केवलज्ञान' प्राप्तिमे बाधक-'आर्त', 'रौद्र'--और साधक-'धर्म', 'शुकल'--चारो ध्यानके स्वरूपको दिखा कर 'केवलप्राप्ति' एव शैलेशीकरणसे 'मोक्षप्राप्ति'की प्रक्रियाका सुदर निरूपण किया है ।

"तीन गुप्ति से योगको जीते, हर परमाद कुरानी ।
अपरमादे पाप योगकुं, बिरतीसे सुख जानी ।"(बा.भा.स.८)

ऐसे ही ससार स्वरूप और उससे मुक्तिके सफल उपाय--

"जग तरु बीज भूत करमजे; खेरू करे सुख पाये ।
सो निर्जरा दोय भेद सुणीजे सकामाकाम बतावे रे ।"(बा.भा.स.९)

ऐसे ही अनेक स्थानो पर योगपरक प्रतीक अष्टदृष्टियोग, भावनात्रिक, पचज्ञानयोग आदि पाये जाते हैं।

ऐतिहासिक--जैन इतिहासने चौबीस तीर्थंकरोके शासनकालमे होनेवाले असख्य आत्माओके ऐतिहासिक उल्लेख दिए हैं । इनमे से श्रीआत्मानदजीम ने भी अनेकोके प्रतीकात्मक उपयोग अपने काव्यमे किए है

"राजमति निज वनिता तारी, **नव भव प्रीत निभाइ** री,
हलधर रथकर मृग तुम नामे, **ब्रह्मलोक** सरजाइ.. **सखी** री . .
गजसुकुमाल लाल तुम तार्यो, भववन सगरे जराइ री
ए उपगार गिनू जग केता, करुणासिंधु सहाइ ... सखी री. ." ह.लि.स्त. ११

"वीर पिता सिद्धारथ रान, जिन-पूजा कुं लक्षदान....सूयगडांगे आर्द्रकुमार".....ह.लि.स्त.-२४

"अश्वसेन अधिराजीके नंदन,भंजन कर्मकठार हो।गर्भ थकी प्रभु मारी निवारी, ठारी अघ **सब भार हो...**

तू शांतिके दाता, शांति जिणंद उद्धार हो...." हस्त लिखित-स्त.-३३
"धर्मनाथ जिन धर्मके धोरी, कर्म कलंक मिटानी....." ह.लि-स्त.-७२
"श्रेणिक नरपति पदकज सेवी, जिनवर पद उपजानी...." हस्त लिखित स्त.-७३
"सनत कुमार तन, नाकनाथ गुण भन, देव आय दरशन, कर मन आसा रे...."(उ.बा.५८)
"नरवर हरिहर चक्रपति हलधर काम हनुमान बर भान तेज लसे है ।
जगत उद्धारकार संघनाथ गणधार फुरन पुमान सार तेउ काल ग्रसे है ।
हरिचंद मुंजराम, पांडु सुत शीतधाम, नल ठाम छर वाम नाना दुःख फसे है ।
देव दिन तेरी बाजी करतो निदान राजी आतम सुधार शिर काल खरो हसे है ।" -उ.बा. ८३

इनके अतिरिक्त विप्रवधू सोमेश्वरी, जयसुर, शुभमति, वणिक पुत्री लीलावती, नृप विनयधर,जिनमति,धनश्री, हालिजन-राजा आदि अनेक ऐतिहासिक प्रतीकोका विधान है।'बीस स्थानक पूजा' काव्यकृतिमे तः प्रत्येक पू मे ऐसे ऐतिहासिक प्रतीकोका निरूपण दृष्टिगोचर होता है ।

सख्यापरक--प्राचीनकालमे एक समय ऐसा था कि सख्या-अकोका महत्व सविशेष रूपसे वृद्धिगत बन गया था। नोबत यहाँ तक आयी कि केवल अकोमे विशिष्टग्रन्थ रचनाये होने ा । अकपरक इन रचनाओंमे सक्षिप्तता- सूत्रात्मकता, गूढ़ता-गुप्तता, बौद्धिकता-रहस्यमयता आदिका निर्वाह भलीभाँति किया जा सकता है। अर्थात् अकसे प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की जाती है । कविराज श्री आत्मानदजीम ने भी कुछ अकोको ऐसे ही निबद्ध करके अपनी रचनाओमे कुछ स्थानो पर इस प्रणालिकाको अपनाकर स्वयको गौरवान्वित किया है-यथा-

"षट् पीर सात डार आठ छार पांच जार चार मार तीन फार लार तेरी फरे है ।
तीन दह तीन गह पाँच कह पाँच लह पाँच गह पाँच बह पाँच दूर करे है ।
नव पार नवधार तेरकुं विडार डार, दशकुं निहार, पार आठ, सात लरे हैं ।
'आतम' सुज्ञान जान करतो अमरथान, हरके तिमिर मान ज्ञान भान चरे हैं ।" उ.बा.५५

इन प्रतीकोके अतिरिक्त और भी प्रतीकोका आयोजन इनकी रचनाओमे प्राप्त होता है-यथा- 'सजन सनेहि सग विजके-सा जमको', 'पर्यो हू काल अनादि भवोदधि कूपमे', 'तरुण अरुण सित नयण', 'मन तरग वेग मोरी नैया', 'वयण अमृत रस नीके', 'पाप-पुण्य दोऊ तस्कर', 'मोह नदीकी गहरी धारा', धर्म कल्पतरु कद सीचता अमृत घन झरता', 'कामभोग जल दूर तजीने, ऊर्ध्वकमल जिम तररे' 'बावनाचदन, रससम वचने, निज आतम सुख भोगी' 'मोह सुभट सग जग दे 'पवन झकोरे पत्र गगन ज्यू उडत फिरे जडकामी' 'सूत्रानुसारी ि ए देशना, भवि चकोर शशि करत आनद', 'कषाय बडवानल', 'पापपक', 'पाप कलक', 'कर्मकलक पहारा', 'सिरसेहरो', 'हियडेकेहार' 'पापलूहण अगलूहणा', 'आतम अनुभव मेघ वरसीया', 'भवोदधि तारण पोत मिला तू,' 'भवनाटक', 'जयो जिनवचन सूर तमनाशक, भासक अमल निधान रे' 'पाप तापके हरणको चदन सम श्रुतज्ञान', 'मगर', 'भुजग 'जडीबुट्टी', 'ऊखर मे मेह तैसो सजन सनेह जेह', 'चातकघन जिम दर्शन चाऊँ मन भावन अभग' आदि अनेकानेक प्रतीकोके प्रबधमे कविराज सपूर्ण सफल रहे है ।

इस प्रकार हमे प्रतीत होता है कि इन पद्योमे रूढ प्रतीकोका तो सफल प्रयोग हुआ ही है साथहीसाथ कुछ नूतन प्रतीकोके आस्वाद भी हमे प्राप्त होते है। चद रचनाओके इस अल्प पद्य साहित्यमे ऐसे विशद प्रतीक विधानकी देन, वाकइ कवीश्वर श्रीआत्मानदजी म की तीव्र मेधा शक्ति एव रसिक-सहृदयी कवि प्रतिभाकी परिचायक मानी जायेगी ।

बिम्ब विधानः— काव्यके तात्त्विक तात्पर्य और प्रतिपाद्य अनुभूतियो एव मानसिक क्रिया-कलापोको अभिभावकके लिए ग्राह्य करवानेवाले माध्यमको 'बिम्ब विधान' कह सकते है । पाश्चात्य साहित्यिकोने बिम्ब रचनाको काव्यका मुख्य व्यापार माना है, जिससे कवि अपनी मानसकि या काल्पनिक सृष्टिका

समुचित उपयोग करते हुए पदार्थके रूप-गुण, घटनाये, भाव या विचारोकी प्रक्रियाये आदिको प्रत्यक्ष रूपमे इन्द्रिय ग्राह्य एव विशेष संवेद्यतासे हृदयगम बनानेका प्रयास करता है। कवि जिस वर्ण्य विषयको प्रस्तुत करनेके लिए जिस चित्रालेखन सदृश बिम्ब विधानका उपक्रम करके उसके मनोवैज्ञानिक पक्षको उद्घाटित करता है, वह काव्य-प्रतिभाकी सहज प्रक्रिया। "अलकार और बिम्ब-दोनो अप्रस्तुत योजनाको लेकर चलते हैं, लेकिन अलकार उससे कलात्मक चमत्कार निष्पन्न करता है; जबकि बिम्ब उससे काव्यमें सप्रेषित प्रभाववृद्धि करता है।"[१८]

इस काव्य प्रवृत्तिका केवल 'बिम्बवाद' नामाभिधान पाश्चात्य साहित्यविदोकी बक्षिस मानी जा सकती है। लेकिन इनसे पूर्व भी पौर्वात्य काव्य कृतियोमे इनका प्रबन्ध प्राप्त होता है। सस्कृत-प्राकृत या हिन्दी आदि किसी भी भाषाके किसी भी समयके उद्भावित सृजनमे हमे इस बिम्ब-विधान प्रवृत्तिका आस्वाद प्राप्त हो सकता है। प्रतीको और बिम्बोका निरूपण जितने जीवनके अतरग भावोको लेकर हुआ है उतना वस्तुवादी रूपमे नही हुआ। फिर भी उन रचनाओमे उनका पर्याप्त एव स्पष्ट चित्रण मिलता है। प्रतीक विधानमे अस्पष्टता-रहस्यमयता-सक्षिप्तता और प्रभावकी शिथिलता होती है, जबकि बिम्ब विधानमे वर्ण्य विषयका निश्चयात्मक-ठोस-स्पष्ट स्वरूप प्रकट होता है। साथ ही साथ चित्रात्मकताके कारण सहज सवेद्यता, प्रत्यक्षीकरणका अत्यन्त विवरित रूप, प्रभाव गाभीर्यसे भावोको हृदयगम करानेकी क्षमता होती है। अर्थात् "बिम्ब योजनाके प्रभावसे काव्यार्थका स्पष्टीकरण, वस्तु या घटनाका प्रत्यक्षीकरण भावोका सप्रेषण या उत्तेजन और रूप या गुणोका हृदयगम कराना कविका लक्ष्य रहता है।"[१९]

यहाँ सूक्ष्म अनुभूतियाँ अथवा गूढ या दुर्बोध-वैचारिक-कल्पनामय तथ्यो या भावोको अप्रस्तुतो द्वारा रूपायित करके प्रभावशाली रूपमें स्पष्ट करना; वर्ण्य विषयको उसके मूलरूप एव सहज स्वरूपमे- जैसे कविने अनुभूत किया है वैसे ही-हमारे सामने प्रत्यक्ष करना, भावो और अर्थोकी जिस प्रमाणसे तीव्रानुभूति कविने की, वैसी ही तीव्रानुभूति सहृदयोको करवाने हेतु भावोकी सप्रेषणीयता या उत्तेजनाको उभारना, वर्ण्य विषयके प्रभाविक रूप-सौदर्य और गुण चित्रणको ताजगीपूर्ण नव्यता प्रदान करना आदि हेतुओको लेकर बिम्ब विधान करनेका कविका लक्ष्य माना गया है।

'बिम्ब विधान'के इस सक्षिप्त विवरणसे यह स्पष्ट होता है कि हमारे जीवनयापन या व्यापारके विभिन्न क्षेत्रोसे बिम्बोका चय सभाव्य है, जिसे प्राय इस प्रकार विश्लेषित कर सकते है-ऐन्द्रिय बिम्ब और मानस बिम्ब। ऐन्द्रिय बिम्ब पॉच इन्द्रियसे सम्बन्धित हो सकते है जबकि मानस बिम्ब मानसिक भाव और विचारोसे आधारित रहते है। इनके अतिरिक्त व्यावहारिक, अनुभूतियो और घटना तथ्योसे भी बिम्ब-चयन होते रहते हैं, जिसके अतर्गत व्यापारिक सास्कृतिक, जीवन व्यवहाराधारित, जीवन आवश्यकताधारित, शृगारिक, यात्रिक या कृषिक आदि विभिन्न आधारो पर आधारित बिम्ब निर्वाचित हो सकते हैं।

इस 'बिम्ब विधान'की साज-सज्जा हमे श्री आत्मानंदजी म की काव्य कृतियोमे यथेष्ट रूपमे प्राप्त होती है-यथा-(१) चउगति-भ्रमण रूप घटना-तथ्याधारित बिम्ब—इस विश्वके चौदह राजलोकके चार गति रूप ससारमे आत्माका निरतर परिभ्रमण अनादिकालसे चालू है—इस घटना तथ्यको कविराजश्रीने श्रीपार्श्वनाथजीके स्तवनमे इस तरह प्रतिबिम्बित करनेका प्रयत्न किया है-

"शिवरमणी जादू हारा, जब पास जिणद जुहारा ....

तिर्यग् अमर नर नारक रूपमें सांग धरे अति भारा, मोहकी दोर बधी गल तेरी, घटमें घोर अधारा... शिव
कुमता रमण भर्म रस राच्यो, नाच्यो अनादि अपारा, माता उदरकूप रसकसमल, मनुष्य जन्ममें धारा...शिव..
किहां हसे ते नाथ निरंजन, हम ढूंढत जग सारा, घोघा मंडण सब दुःखखंडण, मिलियो प्रेम प्यारा.... शिव .."

ह.लि.स्त.८

सास्कृतिक बिम्ब.— भक्त कविवरके दिलमे परमात्माके जन्म कल्याणककी यादसे अत्यन्त प्रमोद और आह्लादके भाव उमड़ते हैं. और कवि मेरु पर्वत पर होनेवाले अरिहंत देवके स्नात्र महोत्सवमे शरीक होनेके लिए हम सबको साथमे ले चलते हैं · जहाँ इन्द्र महाराजा कलश भर भर कर भगवतको अभिषेक करवाते हैं · करते हैं और इद्र-इद्राणि आदि सकल सुर परिवार नाच-गानकी तानमे मस्त होकर जन्म सफल कर रहे हैं -

"कलश इंद्र भर ढारे, जिणंद पर, कलश इंद्र भर ढारे...
हाथो हाथ हि सुर वर लावत, खीर विमल जलधारे . .
गंधर्व किन्नर गण सब करते, गीत नृत्य स्वर तारे .. जिणंद" . .स्ना पू.ढाल-५
तथा "नाचत शक्र शक्री, हेरी माई, नाचत शक्र शक्री
छं छं छं छं छननननन, नाचत शक्रशक्री.. .. हेरी माई... .
इंद्र इंद्राणी करे नाटक संगीत धुनी, जय जय जिन जग तिमिर भानु तूं. ...
घों घों घप मप मादल करत धुनी, सुंदर रंगीली गोरी गावत जिणंद गुनी,
धन्य कृत पुण्य हम जन्म सफल आज, मेटे भव दुःख तुम वरननननन...." - ढाल-६

ऐन्द्रिय बिम्ब· आत्मा चउगति परिभ्रमण करते करते अनत पुण्यराशी प्राप्त्यानन्तर मनुष्य जन्म प्राप्त करता है। लेकिन आराधना-साधनादिसे इसे सफल बनानेको भूलकर कैसे कैसे कृत्य करता है और आयुष्याते उसके क्या हालात होते हैं, उसका तादृश चित्र चित्रित कियाहै ·

"आलम अजान मान, जान सुख, दुःख खान, खान सुलतान रान अंतकाल रोये है ।
रतन जरत ठान, राजत दमक भान, करत अधिक मान अंत खाख होये है ।
केसुकी कली-सी देह, छीनक भंगुर जेह, तीनहिको नेह एह, दुःख बीज बोये है ।
रंभा धन धान जोर, अमित अहित भोर, करम कठन जोर, छारनमें सोये है ...." उ.बा. १०

व्यावसायिक बिम्ब—जीवन व्यवहारको कृषि व्यवसायोपयोगी साधन एव कृषकके जीवन चित्रणके माध्यमसे आत्माके भ्रमको दूर करनेके लिए प्रेरित करते हैं ।

"खेती करे चिदानंद, अध बीज बोत वृंद, रसहे शींगार आद लाठी रूप लइ हे ।
राग द्वेष तुव घोर, कसाय बलद जोर, शिर्रथी मिथ्यात भोर गर्दभी लगई हे ।
तो होय प्रमाद आयु चक्रकार घटी लायु शिर प्रति प्रष्ट हारा कार कर खइ है
नाना अवतार लार, चिदानंद वार धार, इत उत प्रेरकार, आतमकुं दइ है ।" ....उ.बा.-२६

व्यावहारिक · यह ससार एक युद्धभूमि है, जहाँ जीव मोहनीयादि कर्मोसे जग खेलता है, और अतत 'जिनचद'के कृपादानसे विजयी बनता है ।

कुमतानो जादू जारा, जब ऋषभ जिणंद जुहारा....

मोह सुभट जग जेर करीने, करत कलोल अपारा, वपु नगरके बारणे बैठो, साथे सहु परिवारा....
कर्मरायने विवर दियो है, चेतन होय हुश्यारा, सात सुभटका नास करे जो, तो तुम जीत नगारा . .
निंद छोड़ जब चेतन जाग्यो, सात सुभट तीन मारा, मोहराय बलहीन भयो है, अजयणा छोड़त लारा..
जयो जिनचद आनंदके दाता,सघरे काज सुधारा, आतमचंद आनद भयो है,भवोदधि पार उतारा ह.लि स्त ७

मनोभावाधारित--अत कविश्री हमे यह प्रेरणा देते है कि इस ससार समुद्रमे जीव अशरण दीन और अनाथ-बनकर भटक रहा है, जिसका एक अरिहत परमात्माके बिना कोई त्राता नही ।

"साजन सुहाये लाख, प्रेमके सदन बीच हसे मोह फसे कसे नीके रंग लसे है ।
माननीके प्रेम लसे फसे धसे कीच बीच मीचके हिंडोले हीच मूढ रंगरसे है ।
चपला सी झमक अनित बाजी जगतकी रुंखनमे वास रात पंखी चह चसे है ।
मोहकी मरोर भोर ठानत अधिक ओर छोर सब जोर सिर काल बली हसे हैं ।" नव.सं.१६१

इस तरह परम भक्त कविवर श्री परमात्माको इस भवोदधिसे तिरानेके लिए विनित प्रार्थना **करते हुए उस भवोदधिका स्वरूप आलेखन भी करते हैं-जिससे वे डर गये हैं, थक गये हैं और हार गए हैं** -

"तम सुणियो जी, अजित जिनेश भवोदधि पार कीजोजी ।

जनम मरण जल फिरत अपारा, आदि अंत नहीं घोर अंधारा, हूं अनाथ उरझ्यो मझधारा, दुक मुझ पीर कीजोजी....तुम...

कर्म पहार कठन दु:खदायी, नाव फसी अब कौन सहाई, पूर्ण दया सिंधु जगस्वामी, झटती उधार कीजोजी.....तुम....

करण पाथ अति तस्कर भारे, धरम जहाज प्रीति कर फारे, राग फाम हारं गर मोरे, अब प्रभु झिरक दीजोजी. . तुम...

तृष्णा तरग घरी अति भारी, धरे जात सब जन तन धारी, मान फेन अति उमग चढयो है, अब प्रभु शाल कीजोजी....तुम.

लाख चउरासी भमर अति भारी,मांहि फस्यो हु सुध बुध हारी काल अनत अत नहि आयो,अब प्रभु काढ लीजोजी तुम."चतु.जिन.स्त.२.

अत निष्कर्ष रूपमे हम यह कह सकते है कि, प्रतीक विधानमे जैसी सफलता कवीश्वर श्री आत्मानदजी म सा ने पायी है वैसे ही वे बिम्बविधानको भी सप्रेषणीय एव ·ावोत्तेजक रूपमे नियोजित करनेमे सिद्धहस्त कामयाबी हासिल कर सके हैं।

ध्वन्यात्मकता:--- 'ध्वनि'से प्रतिफलित भाव है ध्वन्यात्मकता । 'ध्वनि'शब्द हमे दो दृष्टिबिंदुओका भासन कराता है-प्रथम-सामान्यार्थ, जो नाद-निनाद, ताल-लय-स्वरादि सगीतात्मकताको फलित करनेवाला, और द्वितीय-विशिष्ट्यार्थ, जो गूढ या व्यजक व्यजनाको अभिव्यक्त कर्ता एव जो साहित्यान्तर्गत व्याकरण, रस, रीति अलकारादिका पोषक या सहयोगीके रूपमे सूचितार्थ प्रदर्शित करनेवाला होता है ।

'ध्वनि' विशिष्ट्यार्थ साहित्यसे अनुबद्ध होनेके कारण हम प्रथम उसे लक्ष्य करके कुछ विचार विमर्श करेंगे। अभिधा और लक्षणाके अतिरिक्त विशिष्ट व्यग्य द्वारा जो चमत्कार व्युत्पन्न होता है, वही शब्द-अर्थ रूपको 'ध्वनि' कहते हैं। इस 'ध्वनि'को आचार्य श्री आनदवर्धनने अनुरणन रूपमे प्ररूपित की है, जो घटनाद-सदृश प्रथम तो टकराहटसे टकार,पश्चात् शनै शनै, सूक्ष्म-सूक्ष्मतर होते होते मधुर-मधुरतर झकारको ध्वनित करती जाती है।-यथा- **"एवं घंटनादस्थानीयः अनुरणनान्त्योपलक्षितः व्यंग्योऽप्यर्थः ध्वनिरिति व्यवहृतः ।"**[१००] अत पूर्वाचार्य निर्धारित यह ध्वनि सिद्धान्त व्यजना प्रधान होनेसे काव्यके तीन प्रकार बन जाते है - ध्वनिकाव्य, गुणीभूत व्यग्यकाव्य, और अवर काव्य ।

काव्यमे व्य·ग्यार्थकी निष्पत्ति भी वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ आश्रित रहती है अत व्यग्यार्थकी प्रमुखता प्रधान ध्वनिकाव्यके मुख्य दो भेद होते है - (१) लक्षणामूला-ध्वनि और (२) अभिधामूला-ध्वनि । इन दोनोके दो उपभेद किये जाते है (१) A. अर्थातर सक्रमित और B. अत्यन्त तिरस्कृत, एव (२) A. सलक्ष्यक्रम व्यग्य ध्वनि और B. असलक्ष्यक्रम व्यग्य ध्वनि । साहित्यमे ध्वनिकाव्यकी अतीव विशालताको लक्ष्यमे रखते हुए उपरोक्त भेदोपभेदोके अनेक प्रभेदोपभेद होते है। वाच्यार्थकी तुलनामे गौण या अप्रधान व्यग्यवाले काव्य-गुणीभूत व्यग्य काव्यके आठ भेद माने जाते है-अगूढ, अपराग, वाच्य सिद्ध्यग, अस्फूट, सदिग्ध प्राधान्य, असुदर, तुल्य प्राधान्य एव काक्वाक्षिप्त व्यग्य। और जहाँ व्यग्यार्थ होता ही नही, केवल शब्द-वैचित्र्यसे काव्यमे सौंदर्यानद निहित रहता है वह अवरकाव्य या चित्रकाव्य कहा जाता है। अत सक्षेपमे हम यह कह सकते है कि **"ध्वनि सिद्धान्तकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इसने** अपने अंतर्गत रस, **अलंकार, वक्रोक्ति, रीति आदि समस्त काव्य सिद्धान्तोंके मूल तत्त्वोंका समावेश कर** लिया **है। ऐसा व्यापक काव्य सिद्धान्त विश्वके साहित्यमें नहीं मिलता। यह काव्यकी व्यापकसे व्यापक** और **सूक्ष्मसे सूक्ष्म विशेषताओंको** अपने **भीतर समेट लेता है ।"**[१०१]

अद्यावधि विवक्षान्तर्गत शब्दशक्ति-अलकार-प्रतीक-बिम्बादिके विश्लेषण एव विवरणसे हम यह निर्धारित कर सकते हैं कि श्री आत्मानदजी म सा के पद्य साहित्यमे प्रमुखत ध्वनि काव्यके एव गुणीभूत-

व्यग्य काव्यके भेद-प्रभेदोकी उपलब्धि अभिभावकको काव्यानद और प्रमुदित आत्मतोष प्रदान करनेमे **कामयाब रही हैं । अब, संगीतात्मक-ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियोकी** विवक्षाको **लक्ष्य करके** इनके काव्यकी **आलोचना करनेका प्रयास करेगे जो** छदप्रयोग, **शब्दचयन**, गेयता और राग-रागिणियोकी नवाजिशसे-**अभिभूत हैं** ।

छंद विधान :– "यदि वाक्य भाषाकी ईकाई है तो छंद वाक्यकी भंगिमा है ।" [१०२] काव्य हमारे प्राणोका सगीत है, तो छद हमारे दिलोकी **धडकन** या कपन है । कवि पतके शब्दोमे -"**(छंदसे) वाणीकी अनियंत्रित सांसे नियंत्रित-तालयुक्त हो जाती है,** उसके स्वरोमे **प्राणायम और रोओंमें स्फूर्ति आ जाती है** ।"-अत हम कह सकते है कि व्याकरण शास्त्रका अनुशासन गद्य पर चलता है, जबकि पद्यको शासित करता है'पिंगल' या 'छदशास्त्र'। छद शास्त्रका प्रचार अति प्राचीन कालसे चला आ रहा है। अतरकी अनुभूतियोमे नादसौंदर्य उत्पन्न करनेमे महत्त्वपूर्ण योगदान छदशास्त्रके नियमोका ही माना जाता है । वास्तवमे छद और काव्यका रिश्ता प्राचीन है। भरतमुनिके 'नाट्यशास्त्र'मे छदोका विवेचन मिलता है, तो जैनाचार्य श्री हेमचद्र सुरीश्वरजी म सा ने 'छदोऽनुशासन' नामक ग्रन्थकी रचना करके उसके महत्त्वको सिद्ध कर दिया है ।

'छद' धातुमे 'असुत्' प्रत्यय जोडनेसे 'छन्द' शब्द बनता है । इससे 'छन्द'का व्युत्पत्त्यार्थ होगा–प्रसन्नता, आह्लादन, आच्छादन या बन्धन, अर्थात् काव्यकी आत्माको आनन्ददायक साज सज्जा (आच्छादन) से जो सजाये उसे 'छद' कह सकते हैं । लेकिन, 'छदकी' शास्त्रीय परिभाषा इससे भिन्न रूपमें विभिन्न विद्वानोने विभिन्न प्रकारसे दी है, जिसका तात्पर्य इस तरह निकल सकता है- **"ऐसी पदरचनाको-जिसमें चरण (पाद) मुख ध्वनि-वर्ण-मात्रा-गति-तुक आदिकी एक निश्चित व्यवस्था हों-छंद कहलाती है ।"** [१०३] इस परिभाषानुसार **छदके** लिए आवश्यक तत्त्वोका उद्घाटन इस प्रकार होता है-(१) पाद या चरणोकी और चरणान्तोकी; मात्राओ तथा वर्णोकी, निश्चित रूपमे एव सख्यामे-निश्चित व्यवस्था (२) गति, यति या विरामके नियमोका पालन और (३) गणोकी निश्चित व्यवस्था।

अत काव्यमे छदकी आवश्यकताको लेकर हम कह सकते है कि-A. छद काव्यको आकर्षक, चिरस्मरणीय और लोकप्रिय बनाकर कविकी प्रतिभा एव व्यक्तित्वको प्रदर्शित करते है, B. छद काव्यमे भावकी सप्रेषणतामे वृद्धि करते है । C. छद-काव्यमे लालित्य, श्रुति, मधुरता, कोमलता एव लयात्मकताका सक्रमण करके काव्यको सजीवता बक्षते है D. छद-काव्यमे गेयता प्रदान करते है । E. छद योजनासे काव्य स्थित भावोमे एक-सूत्रता आनेसे छद-रसानुभूतिमे सहयोगी बनते है F. छद योजनासे अभिभावकको भाव ग्रहणकी सुगमता और काव्य कठस्थ करनेकी सरलता प्राप्त होती है । G. छद योजना द्वारा प्रभाविक रूपमे अभिव्यजनासे भाववृद्धि होनेके कारण, काव्यमे अतरग सौंदर्यमे वृद्धि होती है जो श्रोताको मनोरजित करनेमे और उसकी रुचि परिष्कार करनेमे महत्त्वपूर्ण योगदान देती है ।

विद्वद्वर्यो द्वारा इन छदोको प्रमुख रूपसे दो भागोमे विभाजित किया गया है-(१) वर्णिक या वृत्त छद-जो सस्कृतकी देन है, और जिनमे वर्ण-सख्या, लघु-गुरु क्रम और गणोका नियमित या निश्चित रूपमे प्रयोग होता है और (२) मात्रिक या जाति छद-जो प्राकृत और अपभ्रशकी देन है और जिनमे मात्राकी सख्यादि नियमोका पालन होता है । लघु-गुरुके क्रमकी जो अनियमितता-वही मात्रिक छदोकी विशिष्टता होती है । इन दोनो भागोके तीन उपविभाग होते है-सम, अर्धसम और विषम । इनके और भी प्रभेद होते हैं-(१) बत्तीस मात्रा अथवा छब्बीस वर्णोवाले एव उससे कम मात्रा या वर्णोवाले छद–जो 'साधारण' कहलाते है और (२) दडक–जो बत्तीस या छब्बीस मात्रा या वर्णसे अधिक मात्रा या वर्णवाले छद ।

<u>श्री आत्मानदजीम.के पद्यमे छदविधान</u>– भक्तहृदय सूरिदेवने अपनी रचनाओमे-विशेषत उपदेशात्मक रचनाओमे

'सवैया इकतीसा'-छदका प्रयोग किया है । और भक्ति-भाव-प्रवण रचनाओमे-विशेष करके 'पूजा काव्यो'मे जैन परम्परानुसार छद योजना की है ।सामान्यत 'पूजा काव्यो'में प्रत्येक पूजाके प्रारम्भमें 'दोहा'छंद प्रयुक्त होता है जिसके माध्यमसे नि क्षित पूजामे विवरित विषयका संक्षेपमे परिचय करवाया जाता है । तत्पश्चात् प्राय विभिन्न छदोमे, लोकगीतो-ढालो-देशीओमे विषयका विस्तृत निरूपण होता है और अंतमें 'काव्य'रूपमे विविध छदोके माध्यमसे 'संस्कृत'भाषामे उस विवरित विषयकी फलश्रुति एक श्लोकमे की जाती है ।

इन 'पूजा काव्यो'की जैन परपरासे समभिज्ञ गुरुराजने इसका परिपूर्ण रूपमे निर्वाह किया है। इनके पूजा काव्योमे भी प्रारम्भिक परिचयके लिए 'दोहा'छदका प्रयोग और 'काव्य' रूपमे वसततिलका, द्रुतविलम्बित आदि वर्णिक छदोके उपयोग किये गये है । जबकि ढालोमे विविध राग-रागिणियोका कुशलतापूर्वक उपयोग किया गया है क्योकि 'पूजा-काव्य' समूहगानके रूपमे जनसमाज द्वारा भक्तिके उत्कट भावोके साथ वाद्योके सहयोगसे, लयलीन बनकर गाये जाते हैं । इन 'पूजा काव्यो'की रचना हिन्दी भाषामे सर्व प्रथम बार रचनेका श्रेय श्री आत्मानजीम सा को प्राप्त होता है । इनके पद्य साहित्यमे हार्दिक भावसौंदर्य, नाद-ताल और लययुक्त विविध रागोके साचेमे ढलकर प्रस्तुत हुआ है । साथ ही साथ छद योजना भी प्रत्येक पूजामे परपरानुसार प्राप्त होती है ।-यथा-

दोहा–मात्रिक अर्धसम छन्द 'दोहा', अति लोकप्रिय और प्रचलित छद है, जिसके 'विषमचरण'मे तेरह मात्रा और प्रारम्भमे 'जगण'का निषेध एव 'समचरण'मे ग्यारह मात्राये और अत्याक्षरका लघु होना अनिवार्य होता है। कुल मात्राये ४८ होती हैं और यति पादांते होती है । अब, श्री आत्मानंदजीम सा का पूजाकाव्योमे इसका प्रयोग दर्शित है-

"जिनवर वाणी भारती, दारति तिमिर अज्ञान;

सारति कविजन कामना, वारति विघन निदान ।"-अष्ट प्रकारी पूजा 'मंगलाचरण'

"जिनवर **भाषित तत्त्वमें, रुचि लक्षण चित धार; सम्यग** दर्शन **प्रणमिए, भवदु:खभंजनहार ।"** न.पू.-६

"शोभित जिनवर मस्तके, रयण मुकुट झलकंत; भाल-तिलक अंगद-भुजा, **कुंडल अति चमकंत ।" स.भे.पू.१०**

"**आगम अनुसारी किया, जिनशासन आधार; प्रवर-ज्ञान-दर्शन लहे, शिवरमणी भरतार ।"-बी.स्था.पू.१३**

इनके अतिरिक्त **'ध्यान-स्वरूप', द्वादश-भावना-स्वरूप,'उपदेश** बावनी' आदि काव्य-कवनोमें भी यत्र-तत्र 'दोहा'छदके प्रयोग मिलते हैं-यथा-"**पावन भावना मनवसी, सबदु:ख मेटनहार;**

श्रवण सुनत सुख होत है, भवजल तारणहार **।।"-द्वा.भा.स्व.-मंगलाचरण**

"प्रथम निरोधे मनशुद्धि,वच तन पीछे जान; तन वच मन रोधे तथा, वच तन मन इकठान ।।"-'ध्यान स्वरूप'-।

"करता हरता आतमा, धरता निर्मल ज्ञान ।

वरता भरता मोक्षको, करता अमृत पान ।"-'उपदेश-बावनी'-अंतिम मंगल ।

वसततिलका–बदिश-(तभजजगग)-सम वर्णिक साधारण वृत्तवाले इस छदमे प्रत्येक पादके चौदह वर्णमे तगण, भगण, जगण, जगण,गुरु,गुरु,कायोग और आठवे वर्ण पर विराम होता है । कुल चार पादमे छप्पन वर्ण समाविष्ट होते हैं ।

"सन्नालिकेरपनसामलबीज पूर, जंबीरपूग सहकार मुखे फलैस्तै. ।

स्वर्गाद्यनल्पफलदं प्रमदाप्रमोदं, देवाधिदेवमशुभप्रशमंमहामि ।" अ.प्र.पू.-८

द्रुतविलम्बित–बदिश (नभभर)-समवर्णिक साधारण वृत्तवाले इस छदमे प्रत्येक पादके बारह वर्णमे नगण, भगण, भगण, रगण का योग होता है–*यथा*–

"अखिलवस्तुविकासनभास्करं, मदनमोहतमस्सुविनाशकम् ।

नवपदावलिनामसुभक्तितः, शुचिमनाः प्रयजामि विशुद्धये ।"-श्री न.पू.१

सवैया इकतीसा–यह 'सवैया' छदका उपविभागीय छद है । जो दडक प्रकारका छद है । इसमे **इकत्तीस वर्ण होते हैं । यतिप्रायः ८,८,८,७पर निश्चित होती है । अतमे गुरु वर्ण होता है ।** आचार्यश्रीजीने इसका उपयोग विशेषत अपनी उपदेशात्मक रचनाओमे किया हैं-यथा-

"डर नर पाप करी, देत गुरु शिख खरी, मान लो ए हित धरी, जनम विहातु है ।

जोबन न नित रहे, बाग गुल जाल महे, आतम आनंद चहे, रामा गीत गातु है ।

बके परनिंदा जेति, तके पर रामा तेति, थके पुन्य सेती फेर, मूढ मुसकातु है ।

अरे नर **बोरे!** तोकुं, **कहुं रे सचेत हो रे**, पिजरेकु तोरे देख, **पंखी उड जातु है।"** उ.बा.-३६

इस श्लोकमें ८, ८, ८, और ७ पर यति है; लेकिन कही कही पर **अनियमितता भी दर्शित होती है-**

"काची काया मायाके भरोसे भमियो तुं बहु, नाना दुःख पाया **काया जात तोह छोरके"** (उ.बा.२५)

तथा-"ठोर ठोर ठानत विवाद पखपात मूढ, जानत न मूर चूर सत मत बात की "-उ. बा.३५

उपरोक्त पक्तियॉ श्लोकके प्रथम चरणकी है उनमे१६और१५ अक्षरो पर यति आती है । लेकिन इन श्लोकोके शेष चरणोमे ८, ८, ८, और ७ पर ही यति रखी जाती है ।

ऐसे ही दोनो प्रकारके 'सवैया इकतीसा' 'ध्यान स्वरूप'मे भी पाया जाता है-यथा-

(१) **"ईस सब कर्म पीस, मेरु नगरा जईस, ऐसे भयो थिर धीस, फेर नहीं कंपना ।**

कदेही न परे ऐसो, परम शुकल भेद, 'छेद सब क्रिया' ऐही, नाम याको जंपना ।

प्रथम शुकल एक, योग तथा तीनहीमें, एक जोग माहे दूजा, भेद लेइ ठंपना ।

काय जोग तीजो भेद, चौथ भयो जोग छेद, आतम उमेद मोख महिल धरंपना ।"ध्या.स्व.पृ.१८१

(२) **"एकही दरव परमानु आदि चित धरी, उतपात व्यय ध्रुव स्थिति भंग करे है ।"-ध्या.स्व.**

साराश रूपमे हम यह कह सकते हैं कि श्री आत्मानदजीम सा ने बहुत कम छदोको प्रयुक्त किये है, क्योकि, हृदयके अतरग भावोकी मुक्त रूपसे अभिव्यक्ति करनेमे उन्होने छदके बधनोकी अपेक्षा विविध राग- रागिणियोकी बदिशोंको और लोकगीतादिकी चालोको अधिक पसद करके उनका विशेषतया उपयोग किया है। फिर भी जितने छदोका प्रयोग किया गया है वह काव्य-भावानुरूप उपयुक्त है । उन छदोके आयोजनमे कविका साफल्य झलक रहा है ।

शब्द चयनः--आचार्यदेव श्री आत्मानदजीम सा , श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके समकालीन थे । यह वह समय था जब हिन्दी साहित्यका गद्य बाल-शिशुकी चाल चल रहा था । पद्य रचनाओमे तो शुद्ध हिन्दी भाषा प्रयोगकी बनिस्बत ब्रज भाषाके प्रयोगकी ही प्रमुखता स्पष्ट झलकती थी । जिनके नामसे उस युगका प्रवर्तन हुआ, उस युगपुरुषने भी स्वयकी पद्य रचनाके लिए ब्रज भाषाके व्यवहारकी परिपाटीको ही बहुलतया अपनाया हैं ।उस परिवर्तनशील युगकी हिन्दी भाषा शनै शनै समस्त भारतमे अपने पैर जमाकर राष्ट्र-भाषाकी मानिंद उच्च एव उत्तम, विशाल एव समृद्ध स्थिति प्राप्तिके भरसक प्रयत्नमे निरन्तर उद्यमशील थी । अत ऐसे समयमे उसमे अन्य भाषा-भाषी प्रान्तोकी शाब्दिक झलककी उपलब्धि सहज स्वीकार्य है । दूसरा, चिरन्तन प्रकाशकी आशासे जीवनोत्थान और अमरत्वकी प्राप्तिकी ओर प्रेरित करके बधनसे मुक्ति मार्गको सकेतिक करनेवाले कविराज श्री आत्मानदजीम सा जैन साध्वाचार--नव-कल्पी विहार--के निशक दृढ पालक थे । अतएव उनका जीवन भ्रमणशील था, जिससे निरतर विभिन्न क्षेत्रोमे--पजाबसे लेकर गुजरात पर्यंतके प्रमुख ग्राम नगरोमे विचरण करते करते अनेक जन एव जैन समाजोसे परिचयमे आते रहे । यही कारण है कि उनकी वाणीमे उन भाषाओका-गुजराती, राजस्थानी, मारवी, खडीबोली आदिका सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है । स्वय पजाबी भाषी होनेसे पजाबी और उर्दू भाषाके शब्दोकी तो भरमार छलकती है। चूकि उस समय तक धार्मिक ग्रन्थ सस्कृत या प्राकृतमे लिखे जाते थे और सुरीश्वरजी भी इन भाषाओ पर प्रकाड प्रभुत्वधारी थे ही, अत अधिकतर जनजीवनमे व्यवहृत लोकबोधगम्य सस्कृत-

प्राकृतके भी तत्सम-तद्‌भव शब्दोका प्रभूत मात्रामे प्रयोग भी झलकता है ।

उपरोक्त निमित्त-कारणोसे उनकी भाषामें विविध भाषाके शब्द प्रयोगोंका प्राप्त होना अस्वाभाविक तो नही है, प्रत्युत इन प्रयोगोंसे भावाभिव्यक्तिको अधिक सबल बनानेमे सहयोग ही मिला है । जैसे श्री ऋषभदेवजी भगवतके माढ रागमे रचित स्तवनमे-जो राजस्थानियोका प्रिय राग है और जिससे वैराग्य-वासित आत्माकी प्रभु-प्रीति और प्राप्तिकी तड़प आदि भावोमें विशिष्ट निखार आता है-आपने भी राजस्थानी शब्द प्रयोगका विशिष्ट उपयोग करके उस स्तवन-काव्यमे अत्यधिक मार्मिक अनुभूतिकी अभिव्यक्ति की है-यथा-

"मनरी बातां दाखाजी, म्हारा राज हो, रिखबजी थानें...

मन मर्कटकुं शिखो निज घर आवेजी, म्हारा राज रे कांइ ।

सघली बाते, समता रंग रंगावेजी म्हारा राज हो रिखबजी थाने...."आ. वि.स्त.-पृ-८६

इस तरह हम देखते हैं कि गुरुदेवके काव्य विशेषत ब्रज भाषामे लिखे जाने पर भी उनमे हिन्दी खडी बोली, राजस्थानी, गुजराती, मालवी, पजाबी, उर्दू आदि भाषाओके उपयुक्त सम्मिश्रण और सस्कृतादिके तत्सम-तद्‌भव शब्दोके प्रयोगसे काव्यमे ताजगी-स्फूर्ति-चूस्तता और चारुता एव काव्य-चातुर्य-निष्पन्नता आती है, जो काव्यको हृदयस्पर्शी प्रभावकतासे भर देती है । किसी वस्त्रके फटने पर एक अबुध उस पर पैबद लगाता है, जो वस्त्रको असुदर बना देता है, जबकि उसी वस्त्रको अन्य विचक्षण व्यक्ति अपनी विलक्षण सुझबुझसे इस कदर पैबद लगाता है कि, वस्त्रमे एक नयी परिकल्पना उभर आती है, जो शायद उस वस्त्रको अधिक सुदरता बक्षती है । ठीक वैसे ही कविराजश्रीने भी विविध शब्द प्रयोगोंके पैबद ऐसे लगाये हैं जो नूतन परिकल्पनाके साथ काव्यमे चमत्कृत उद्‌भावनाओंको प्रत्यक्ष करवाते हैं ।

अब हम इनके काव्यमे प्रयुक्त विभिन्न प्रायोगिक शाब्दिक इन्द्रधनुषी-आभा-सौंदर्यके दर्शन करे -

पजाबी शब्द :- पजाबी होनेके नाते पजाबी भाषाके शब्दप्रयोग अधिक मात्रामे मिलते है-

अव्ययके रूपमे --- **संती(समेत), इतरां(अन्य), कदे(कभी), नेडे(नज़दिक), ऐन(ऐसे), ओडक(आखिर), जौलों... तौलों(जबतक....तबतक), नाल(साथमें), रीते(खाली), काको(क्यूं), परले(पीछे के), सरवंग** आदि; *सर्वनामके रूपमे*- **तिनसे(उनसे), तिनमें(उनमें), मैनुं(मुझे), तोनुं(तुझे),** आपना(आपका) आदि; *जातिवाचक सज्ञा* - **हाटक(सुवर्ण) पूत (बेटा), सथान(स्थान), मुनिवरिंद(मुनिवृंद)** आदि: *भाववाचक सज्ञा* --- **चंगा, चंगेरा, नीके(सुंदर), टरा(अकड़ता), प्रणाम(परिणाम)** आदि; *क्रियावाचक* --- **जप्पो(जल्पना-बोलना), चइये(चाहिए), दर्से(कहें), कीते(किया), गेरे(डाल दें), भामरी, कूफर धोहे, मन टोहे, गुमर आदि;** *वर्णविपर्यय* --- **प्रणाम(परिणाम), सथान(स्थान), वरिंद(वृंद), पर्तक्ष(प्रत्यक्ष)** आदि; *खाद्यपदार्थके नाम* --- **माटा, दोठा, मठड़ी, सबुनी, कलाकंद, कलीदाना, गुज्जा, बिदाना, पेठा** आदि ।

उर्दू शब्द - **यारा(दोस्ती), यार(मित्र), नूर(चमक)** आदि

गुजराती शब्द :- **मुज भणी(मेरी ओर), माटी तणो घट(मिट्टीका घट), छाजे(सोहे), मांडीयें** (प्रारंभ **कीजिए), केटला(कितना), जीवना(जीवके), बेसु(बैठुं), आगल(सामने), करशुं(करेंगें), शुं(क्या), वधे(बढे), जोया(देखा), हुं(मैं), टाणा(अवसर), करथी(हाथसे), रुल्यो(भटका),** राजी(प्रसन्न) आदि ।

मराठी शब्द - यद्यपि सुरीश्वरजी का विचरण महाराष्ट्रमे नही हुआ फिरभी क्वचित मराठी शब्द प्रयोग भी आपने किये **है-यथा-झाली (हुई), ठेवली (रखी),** ठपना आदि ।

राजस्थानी शब्द :- **दूजो (दूसरा), छै (है),** वेगा (जल्दी), **छारना (निकम्मा बनाना), मोने-माने-मोहको (मुझे), घनेरो (बहुत), थाने (आपको), दाखां (कहना), बेर करना (देर करना), मो मन (मेरा मन), लार (साथ), भींचके (बंद करके), तो कुं (तेरे पास), मनरी (मनकी), थे (आप), झीले (स्नान करें), खेरुकरे, शिरथी, गर्दभी (खेतीके साधन), घरंपना** आदि ।

प्राकृत :- **निक्षेपा (निक्षेपा)** वाग-जोग **(वाक्ययोग), परतीत (प्रतीत), आणा (आज्ञा), मोख (मोक्ष) पुग्गल (पुद्गल), सांग (स्वांग), रयण (रत्न), अइदिट्ठि (अष्ट-दृष्टि), नेह (स्नेह), जम्म (जन्म), अप्पा (आत्मा), सुरग (स्वर्ग), बिजोग (बियोग) आदि**

इनके अतिरिक्त अपनी भाषामे मधुरता लानेके लिए ध्वनि-नाद सौंदर्य **व्युत्पन्न** करनेके लिए आपने **पद्य** रचनाओमें **विशिष्ट शब्द** प्रयोग भी **किये हैं** *-यथा-***शब्दोके रूपमें परिवर्तन करते हुए लाघव** युक्त मधुरता भरनेवाले प्रयोग- **मुरझाइयां, सुसाइयां, धाइयां, पाइयां, आइयां, छाइयां आदि एक ही पद्यमें प्रयुक्त करके;** पियारिया (प्यारा), पूजारिया (पूजारी), पहाडिया (पहाड़), **इछिया (ईच्छा) आदि परिवर्तन करके; सोहंदा, रतनंदा** आदि मधुर रूप बनाये गये है तो नादसौंदर्यके लिए विशिष्ट प्रयोग -

"**घूं घूं** धप तार **चंग**, **खुखुहघुटट** जल तरंग

वेणु बीणा तार रंग, जय जय **अघटारी** ।" ... आ.वि.स्त.पृ.६०

"**अखय भंडार भरे कौन करे वरननन**"......**अष्ट प्रकारी पूजा - धूपपूजा**

रसोपलब्धिः—आत्मा देह द्वारा आहार ग्रहण करके और उसका रसमे परिणमन करके उसीसे देह निर्माण करती है, वैसेही कवि स्वात्मासे उद्भवित निजानद स्वरूप-रसाप्लावित भावसृष्टिको सत्-चित्-आनदकी सीमाको स्पर्श करनेवाले शब्दार्थके सहयोगसे निर्मित कृति द्वारा प्रवाहित करता है, जिससे अखड रसोपलब्धिकी प्राप्ति होती है, साथ ही ब्रह्मानद सहोदर अलौकिकताका आस्वाद उपलब्ध होता है।

रस- क्या है-"**रसो वै सः**" रस आनद स्वरूप ब्रह्म है—काव्यका प्राण-काव्यकी आत्मा है। रस कवि कल्पनाका नियमन एव काव्यगत सपूर्ण भावसंपदाका अतर्भाव है, जो हृदयकी मुक्तावस्थाका अनुभव करवाता है, जहाँ भावकी भूमिका पर शब्दार्थके सौंदर्यका आस्वाद और शुद्ध मानवीय-मानसिक अनुभूतिं रस रूपमे ही प्राप्त होती है, जो साधारणीकरण द्वारा काव्यकी भावसपदाको सार्वजनिक बनाकर चीरजीव बनाती है। इसे ही विश्लेषित करते हुए डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन्जीने अपने भावोंको इन शब्दोमे अभिव्यक्ति दी है—"**काव्य शब्दोकं माध्यमसे अनुभूतिकी अभिव्यक्ति है। कविके अनुभव साधारण व्यक्तिके अनुरूप ही होते है, परंतु उसकी प्रेरित—अनुभूति चेतनाकी उस सांद्रता और घनत्वकी अभिव्यक्ति होती है, जो साधारण व्यक्तिकी क्षमतासे इतर है।**"

रसनिष्पत्ति—रस सिद्धान्तका प्राचीनतम निर्देश भरतमुनिके 'नाट्य त्र'से प्राप्त होता है। रस निष्पत्ति विषयक उनका अभिमत यह है कि, "**विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रसनिष्पत्तिः**"- अर्थात् विभाव-अनुभाव और व्यभिचारी भावोके सयोगसे रसनिष्पत्ति होती है। *भट्टलोल्लट*के मतानुसार विभाव-कारण और रस-कार्य है, अर्थात रसकी उत्पत्ति विभावोसे, पुष्टि सचारियोंसे, और अभिव्यक्ति अनुभावोसे होती है। *भट्ट नायकके* मतानुसार अभिधासे शब्दार्थ-ज्ञान होने पर भावकत्व द्वारा भावकको अनुभूति होती है, और विभावादि साधारणीकृत होकर सर्वके अनुभव योग्य बन जाते है, जबकि *अभिनव गुप्तजी* अभिभावकमे ही रस निष्पत्ति मानते हैं-यथा-स्थायीभाव, वासना या सस्कार रूपमे अभिभावकमे विद्यमान होते ही हैं, जो विभावादिके साधारणीरण द्वारा उदभूत होकर उसे तन्मय बनाते है और वह, उस रसानदका अनुभव करता है।

अत निष्कर्ष रूपमे हम यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार किसी विषयको आलेखित करनेवाली, चित्र-विचित्र रेखाये विभिन्न रगोकी सप्रमाण सजावट युक्त चित्राकनसे निष्पन्न किसी सुदर चित्राकृति दर्शकको विशिष्टानदानुभूति करवाती है, उसी प्रकार स्थायी भावको पूर्णतया आस्वादन करनेके लिए उसे उद्बुद्ध करने हेतु सर्वांग साधारणीकरण प्राप्त विशेष प्रकारके एव यथावश्यक विभावो और अनुभावोके सयोग होने चाहिए।

श्री आत्मानजीम सा.के पद्योका रसास्वादन--श्रीआत्मानदजी म मा प्रथम भक्त थे, बादमे कवि, अत

आत्मानुभूतियोके प्राधान्यको लेकर भक्तिकी मधुरतामे पगे हुए सत्य-शाश्वत धर्म और दर्शन, साधना और सिद्धान्तोंका निरूपण सरल एवं हृदयस्पर्शी, फिर भी अनन्य वैशिष्ट्यके साथ किया गया है। यद्यपि उनकी कृतियोकी सृजना काव्य-शास्त्रीय उद्देश्यको लेकर नही हुई, न उनको काव्यकी आत्मा, साधारणीकरण या रस-निष्पत्तिकी परवाह थी; न वे स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, सचारी भावोकी समन्वित अनुभूतिके प्रति सावधान थे, फिर भी काव्यके माध्यमसे उन्होने अपनी हार्दिक-सूक्ष्म एव तीव्र आत्मानुभूतियोंको इस कदर प्रवाहित किया है कि, उनसे भाविकोके दिलोसे स्वतः साधारणीकरण होकर यथायोग्य रस-निष्पत्तिका तजुर्बा होने लगता है।

पूर्वाचार्योंने रसके नव प्रकार माने थे और उत्तर मध्यकाल पर्यंत पहुँचते पहुँचते उनमे अन्य दो रसोकी समन्विति की गई—वात्सल्य और भक्ति—जिनको स्वतत्र रस रूपमे स्वीकारनेवाले भोज, भानुदत्त, विश्वनाथ, हरिश्चन्द्रादि है-अत शृगार, हास्य, करुण, वीर रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्भूत, शात, वात्सल्य और भक्ति—इन ग्यारह रसोमेसे आचार्य प्रवरश्रीके पद्य साहित्यमे भाव सुमनोके उद्घाटक, आनदोल्लासकी अनुभूतियोके निर्झरोंके प्रवाह रूप, वात्सल्य रसके माधुर्य और शातरसकी सुधाधाराओमे प्रवाहित विभिन्न रसोका यहाँ परिचय करवाया जा रहा है।

भक्त कवि श्री आत्मानदजी म सा की रचनाओमे विशेषत भक्तिरसको प्राधान्य मिला है जिसकी भावपरक पृष्ठभूमिमे हम भक्तिके राग-अनुराग, त्याग-वैराग्य, विनय-विवेक-विश्वास, ज्ञान-ध्यान-विज्ञान, आत्मनिवेदन और सर्वसमर्पण आदि वैविध्य पूर्ण अंगोका प्राधान्य देख सकते है। सामान्यत भक्तिरसके अतर्गत शातरस, वात्सल्य रस और मधुर-दास्य-सख्य भावोसे छलकता शृगार रस पलता हुआ अनुभूत होता है। उन्ही दर्पणमें उनके भक्तिरस प्रवाहका दर्शन करेगें-

राग-अनुराग भावकी सख्य भक्ति (सयोग शृंगार रूप)—

"प्रीत लागीरे जिणंद शुं प्रीत लागी ..... तें तार्यो प्रभु मोहको रे, हरि भवसागर पीर;
ज्ञान नयन मुझे तें दिये रे, करुणा रसमय वीर....." (आ.वि.स्त.पृ.६१)

त्याग-वैराग्यके भावमें पगा हुआ भक्ति रस—

"भव तरु डार ताण विस्तारिया, मोहकर्म जड़मूल जर्यो रे,
क्रोध मान माया ममता रे, मतवारे थिहुंकन धर्यो रे.....अब **क्यूं पास परो मन हंसा** .....
पास परन वामा रस राच्यो, खांच्यो कर्मगति चार पर्यो रे
राग द्वेष जिहाँ भये रखवारे, भवबन सघन जंजीर जर्यो रे..... (आ.वि.स्त.पृ.९६)

सयोग शृगार रसासिक्त विनय-विवेक और विश्वासयुक्त माधुर्य भक्तिको देखे-

"मेरो कोई न जगतमें, तुम छोडी हो जगमें जगदीश,
प्रीत करुं अब कौन सुं, तुं त्राता हो मोने विसवावीस ..... (**चतु.स्त.**१४)

प्रभुके प्रति प्रणय भाव रूप भक्तका आत्म निवेदन—

"जैसे धेनु वन फिरे रे, मन बछरेके रे मांह, चरणकमल त्यूं वीरके रे, छिनकही विसरत नाह...
विंध्याचल रेवा नदी रे, गजवर **भूलत** नाह, **मनमोहन** तुम मूर्ति रे, सिमरत मिटे दुःखदाह .....
कदियक दिन मुझ आवशे रे, **निरखुं तेरो रे रूप,**
मो मन आशा तो फले रे, फिर न **परुं भव कूप**— (आ.वि.स्त.पृ.६२)

सर्व समर्पण भावमे अनन्य भक्ति भावनाके भाव—

"त्रिभुवन **ईश सुहंकर** स्वामी, अंतरजामी तुं **कहीये**, कल्पतरु चितामणी जाच्यो, आश निराशे ना रहीये ..
तुम बिन तारक कोई न दीसे, होवे तुमकुं क्यूं कहीये, . .
इह दिलमें ठानी, **तारके सेवक, जगमें जस लहीये..(ऋषभदेव** स्त.)

वैसे तो श्री आत्मानदजी म.सा का समस्त पद्य साहित्य भक्ति भाव प्रधान छलछलाता मानस-

सर है. जिनमे कुछ भावोके प्रणयनके आह्लादके बाद उनके वात्सल्य-भक्तिके भी कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। *वात्सल्यरस*—भ महावीरको माता त्रिशलाजी गोदमे लेकर खेलाती हैं। उनके उमड़ते हुए भावना भरपूर इस पदको आस्वादें-**"त्रिशलादे गोद खिलावे छे.....**

बीर जिणंद जगत कृपाल, तेरा ही दरस सुहावे छे.....
आमेरबाला, त्रिभुवनलाला, ठुमक ठुमक चल आवे छे.....
पालने पोढ्यो त्रिभुवन नायक, फिर फिर कंठ लगावे छे.....
आओ सखि मुझ नंदन देखो, जगत उद्योत करावे छे.....
आतम अनुभव रसके दाता, चरण शरण तुम भावे छे.....(ह.लि.पद.४९)

पालनेमे सो रहे श्री पार्श्वनाथ भगवतकी स्वर्गलोकके इद्र इद्राणीकी भक्ति—

"पालने जिन पास पोढइया
सुरपति मिल सब देत है लोरी, हर्षि वामा देवी मइया.....
इंद्राणी मिल मंगल गावे, नाचे करे ता ता थइया.....
तू मेरा लाला, सब जग बाला, फिर फिर निज मुख मटकइया.....
आतम कल्पतरु जग प्रगट्यो, दीठके प्रभु आनंद लइया..... (ह.लि.स्त.६५)

ऐसे ही उनकी पूजा काव्य-कृतियोमे भी-विशेष रूपसे *"स्नात्रपूजा"*में-वात्सल्य रसके प्रवाह हमे भिगोते हैं- **"सुपन महोत्सव करो भविरंगे, मुक्तिरमणी सुख लहो भवि चंग"-ढाल-२**

"जन्म महोत्सव गावो रे, भवताप निवारी".....ढाल-३

इस प्रकार सभी ढालो और कलशमे श्री अरिहत भगवंतके जन्मोत्सवका वर्णन किया गया है।

शांतरस:—साधककी साधनाका चरमलक्ष्य आत्मिक सुख प्राप्ति है, जो भवनिर्वेदसे प्राप्त होती है। अत ऐसी उत्तम साधनाके उत्कृष्ट साधककी कृतियोमें उसका विन्यास होना सहज है, जिससे शातरस निष्पन्न होता है। उनके पद्य साहित्के बहुलाशमे रसराज—शातरसका अनुभव मिलता है। यहाँ कुछ उदाहरण पेश करते हैं। *आत्माकी स्थितिकावर्णन करते हुए श्री वासुपूज्य स्वामीजीके स्तवनमे वे गाते हैं-*

"आतम रूप भूलाय रम्यो पर रूपमें, पर्‌यो हुं काल अनादि भवोदधि कूपमें;
अब काढो गही हाथ, नाथ मुझ वारिया, पाऊँ परमानंद करमरज झारिया।".....

कितनी ही रिद्धि-समृद्धि या भोग-विलास आत्माको प्राप्त हो, लेकिन श्री आत्मानदजी म सा कहते हैं कि, इन सबसे आत्मा कर्म-मुक्त नही हो सकती । उसके लिए तो-

"जिन भक्ति फल पाये, मोक्ष तिन नाहि दूरे".....

आत्म हितकारी और भवनिर्वेद प्राप्तकारी उनकी वाणी *"उपदेश बावनी"*मे भी स्थान-स्थान पर प्राप्त होती है-यथा-

"रुल्यो हुं अनादिकाल, जगमें बीहाल हाल, काट गत चार जाल, डार मोह कीरको;
नरभव नीठ पायो, दुषम अंधेर छायो; जगछोर धर्म धायो, गायोनाम वीरको (उ.बा.५०)

*"भावना स्वरूप"*मे ससार स्वरूपका वर्णन पढते ही अतरमे निर्वेद भाव-झरने लगता है, और नश्वर सुखकी धडाधडीसे मन विराम पाता है ।

"रंग चंग सुख मंग, राग लाग मोहे सोहे, छिनकमें रोहे जोहे, मौत ही मरदके
नीके बाजे गाजे साजे राजे दरबारहीमें, छिनकमें कूक हूक सुनीये दरदके"

उपरोक्त रसोकी अग्रीमता होने पर भी उनके पद्योमे शेष अन्य रसोको भी यथोचित स्थान प्राप्त हुआ है।

करुणरस—राजुलके साथ शादी निमित्त, श्री नेमिनाथ भगवत बरात लेकर आते हैं, और 'पशुओके वधका' निमित्त बनाकर बिना ब्याह किये लौट जाते हैं, तब विरहिणी राजुलके अंतरकी पुकार हमारी करुणाको झंकृत कर जाती है।

"शामरे.....ना जा रे.....

नव भव केरो नेह निवारी, छिनकमें ना छटका जा रे .....

हुं जोगन भइ नेह सब जारी रे, अंग विभूति रमा जा रे.....

मैं दासी प्रभु तुमरे चरनकी, आतम ध्यान लगा जा रे..... (आ.वि.स्त.-११)

वीर--वीररस प्राय युद्धभूमि आदिके वर्णनोमे अधिक फबता है।कविने यहाँ आत्मा और मोहनीय कर्मका युद्ध वर्णित किया है जिसमे आत्माकी वीरता प्रदर्शित की है-

"मोह सुभट जग जेर करीने, करत कलोल अपारा

कर्मरायने विकर दियो है, चेतन होय हुश्यारा.....

सात सुभटका नाश करे जो, तो तुम जीत नगारा,

नींद छोड़ जब चेतन जाग्यो, सात सुभट तीन मारा.....

मोहराय बलहीन भयो है, अजयना छोड़त लारा,

कुमति कुटल बिटल मदनासुर, राग-द्वेष निशिचारा.....

भयानक—ससार समुद्रकी यथा स्थित भयकर स्थितिका साक्षात् वर्णन...

"मोह नदीकी गहरी धारा, भ्रमत फिरत गत चार मंझारा;

मझधार अटकी मोरी नैया, अब प्रभु पार कीजोजी.....

चार कषाय बड़वानल जामें, राग-द्वेष मगरादि नामें

कुगुरु, कुघाट पड़ी मोरी नैया, वही थाम लीजोजी.....

विषय इन्द्री वेला अतिभारी, काम भुजंग उठे भयकारी, मन तरंग वेग मोरी नेया...

पाप-पुण्य दोउ तस्कर घेर्यो, मैं घेर्यो प्रभु तुम गुण केरो,

तुम बिन कौन सहाइ मेरो, भवसिंधु पार कीजोजी.....

बीभत्स-जीवके आहार-निहारका, जो जुगुप्सादायी चक्र चलता है, जिसे सुनकर आहार छोडनेका मन हो जाय और अनहारी बननेका विचार उद्भवित हो-उसका वर्णन करते है-

"सब जगमांहि जेता पुद्गल, निगल निगल उगलाना।

छरद डार कर फिर तू चाखे, उपजत नाहि ग्लाना रे....."

जीवके जन्मके पूर्वकी गर्भावस्थाकी स्थितिका चित्रण-

"माता उदर कूप रसकसमल, मनुष्य जन्ममें धारा..... जोनि द्वार खाल तुम निकसे, पुण्य उदय रखवारा...."

अद्भूत—अरिहत परमात्माके अष्ट प्रातिहार्यके अद्भूत वर्णनको श्रीपार्श्वनाथ भगवतके स्तवनमे वर्णित किया है- **"तीन छत्र प्रभुके पर रह कर, त्रिभुवन स्वामी जनावे रे.....**

चामर कहत है, नीचे झुककर, उर्ध्वगति तुम जावे रे.....

भामंडल पूंठे प्रभु दर्सण, तम मिथ्यातम नावे रे.....

अजुत योजन ध्वज आगल प्रभुके तिस उपर कर साखा रे. "आ वि स्त २१

इस प्रकार भक्ति रस प्राधान्य पद्य रचनाओके रचयिता सहृदय-कवीश्वर द्वारा प्राय सभी रसोकी निष्पत्ति होते हुए रस निर्झरोकी वैविध्यपूर्ण अमृतधारा प्रवाहित हुई है जो आस्वादकके अतरको स्पर्श करते हुए हृदय कमल विकस्वर करनेमे नितान्त सफल हुई है।

राग-रागिनियोंसे नवाजित अमर काव्यदेहका वैभविक वर्णन:—जीवनोल्लास वर्धक, सागितिक तालबद्धता एव लयबद्धता युक्त जीवन-सगीत, अनादिकालसे हमारा सगी रहा है, अर्थात् सगीत

हमारा जीवन है. क्योकि यह हम सबका अनुभव है कि अत्यन्त शुष्क-नीरस जीवनको सगीतके **सहारे प्रफुल्लित एव प्रसन्न बनाया जा सकता है. अथवा भयंकर तप्त वैशाखी दोपहरीमें नीमके** पेड़के नीचे बैठकर सारग राग गाने-बजानेसे अनुपम-अद्‌भूत शीतलताका अनुभव होता हैं. या मेघ मल्हार राग गाने-बजानेसे बिन बादल वर्षारानीका आगमन करवा.. जा सकता है; तो दिपक-रागसे बिना किसी तीली आदिकी सहायता अपने आप ही दीप प्रज्वलित किये जा सकते हैं । ऐसे ही अनेक राग-रागिनियोंके अनुभव प्रत्यक्ष हैं । किसी भी रागका रग तब खिलता है जब वह स्वयोग्य वातावरण निष्पन्न कर दे, तभी उसका महत्त्व और प्रभाविकता वर्धमान बनते हैं ।

यह साधारण-सा प्राथमिक परिचय ही सगीतके साथ जीवनका घनिष्ठ सम्बन्ध प्रस्तुत करता है । मानव तो क्या निसर्गकी गोदमे खेलने और पलनेवाले पशु-पक्षी भी इससे प्रभावित बनकर तन-मनकी सुध-बुध गॅवाते दृष्टिगत होते है । हमारा यह भी दैनिक अनुभव है कि प्रकृति भी सगीतके प्रभावसे अभिभूत होती है । अत जीव या जड सभी सगीतकी प्रभविष्णुतासे वेष्टित है। रुदनको हास्यमे या हास्यको शोकमें परिवर्तित करना-शुष्कको सरस और मौनको मुखर बनाना-सगीतका निजी सामर्थ्य है । अतएव सहृदयोंके जीवनमे सगीतकी कशीश विशेषतया दृष्टिगोचर होती है। उनके विचार-वाणी-वर्तनमे, सर्वत्र-सर्वदा सगीतात्मकता समाविष्ट रहना अत्यन्त स्वाभाविक है ।

श्रीमद् विजयानद सुरीश्वरजी म.सा.भी एक ऐसे व्यक्तित्वसे सम्पन्न थे, जिनमें हम इन विशिष्टताओको झलकती हुई प्रत्यक्ष कर सकते हैं। उनके कठसे बहनेवाली हवा सागितिक झकारसे युक्त रहती थी । जैसे प्रत्येक स्वरके प्रस्फुटनमे प्रकट होती थी तालबद्ध सुरीली स्वरावलि, जो श्रोताकेदिल-दिमागको डोलायमान करानेके लिए पर्याप्त होती थी । उनके विचार और वाणी जैसे सगीतके लय और तालसे परस्पर सम्बन्धित स्पर्धा करते थे, अर्थात् उनके अतस्तलसे विचार लयात्मक और जबानसे वाणी तालबद्ध रूपमे प्रकट होती थी । जैसे परमात्माकी गिरा प्रमुख रूपसे 'मालकौंश' रागमें प्रवाहित होती–है, ठीक उसी प्रकार उनके देशना प्रवाहमे 'भैरवी'की मधुर लय झिलमिलाती हुई श्रोताओंको अत्यन्त प्रमोदित करती थी । एक ही सम-सूरमे तालबद्ध शाब्दिक स्वर, लयबद्ध नर्तन करते हुए कर्णपटल पर कब्जा जमा देते थे । एक बार देशना श्रवण करनेवाला सहृदय श्रोता बारबार आपके सुरीले स्वर सुननेका लालची बन बैठता था । आपके कठसे निकलनेवाला गहन गभीर स्वर समुद्रगर्जन या मेघगर्जनका सानी होता था । किसी प्रसिद्ध उस्ताद गायकने भी एक बार आपकी ऐसी सुरीली गंभीर स्वर लहरी पर आफरिन होकर अत्यत आश्चर्य मिश्रित आवाज़मे प्रशसा करते हुएं कहा, **"महाराज ! आप तो संगीत कला-पारगामी हैं । आप तो उस्तादके भी उस्ताद हैं।"**[१०४] अतएव हमे प्रश्न उठता है कि ऐसी सगीत साधना उन्होने कब, कहाँ और किनसे प्राप्त की होगी ? श्री फतेहचंद झवेरभाई शाहके शब्दोमे, **"श्रीमद् आत्मारामजी महाराजने इस संगीतकलाको पंजाबमें किसी उपाश्रयके समीपस्थ संगीत निष्णात-उस्तादके मकानसे सुनाई देनेवाले आलाप–आरोह-अवरोहादि सुनने मात्रसे ही संपादित की थी; जिसके आधार पर पद, स्तवन, पूजादि सभी प्रकारके भक्ति-भावयुक्त संगीतकी लहरियोंमें जैनदर्शनके विशाल-गंभीर ज्ञानको सहज एवं सरल रूपमें प्रस्तुत किया।"**[१०५]

सहृदय कविराजके काव्योमे आत्मीय मस्ती और भरपूर पद लालित्यसे झकृत सुरावलि, हृदयोर्मिको जागृत करके रोमराजीको विकस्वर कर देती है या, जो अनिर्वाच्य सुखका अनुभव कराती है एव जो रससिद्ध नैसर्गिक कृतियोकी मर्मस्पर्शिता और गुण सम्पन्नता प्राप्त है, हमे लबालब भरे रस सरोवरमे स्नान करवानेकी शक्ति रखती हैं। उन रचनाओको साजोके साथ गाया-बजाया जाने पर प्रच्छन्न मत्रमुग्धताका प्रभाव प्रगट हो उठता है, फलत आनदानुभूतिका अवधि हिलोरे लेने लगता

है। उन स्वरलहरियोका आस्वाद **अनेकबार, बार-बार करनेके** लिए मन मजबूर बनता है । श्री **मोतीचंद कापडियाजीके** शब्दोमें - **"उनके काव्योंसे अगर उनकी अंतरात्माकी पहचान हो सकती हो तब वह अति उदात्त भावोंमें सर्वदा मस्त रहती होगी—ऐसा ही अंदाज़ किये बिना रहा नहीं जा सकता। उनकी वाणी अंतर्दशाका आविर्भाव है, उनके शब्दचित्र अंतरात्माका प्रदर्शन हैं और उनके व्यक्तित्वको समझनेके लिए उनके हार्दिक उद्‌गार फोटोग्राफ रूप है ।"**[१०५] इन्ही भाव प्रतिबिम्बको ऐसे ही कुछ रसाशयुक्त आलेखनोमे प्रत्यक्ष करानेवाला प्रयत्न अब किया जाता है ।

भैरवी — "भैरवी सदा सुखदायिनी" अर्थात "भैरवी" किसी भी समय गा सकते है, फिर भी विशेष रूपसे सुबहके समय गाना चाहिए । कई वार कार्यक्रमके समापनके समय भी गाया जाता है। गभीर ध्वनिके साथ सभी सूरोसे गाया जा सके ऐसा यह भैरवी राग ज्यादा असरकारक वातावरणका आविर्भाव कर सकता है । जैसे सिद्धोर्क' अकल-अपूर्व गतिका वर्णन गभीर ध्वनिके साथ गानेसे मानो श्रोता भी सिद्धशिला पर स्वयको स्थित हुआ अनुभव कर सकता है-

"बंधन छेद असंग लही, गति कारण पूर्व प्रयोग कही;
जब गति परिणामका राग गहे, सिद्ध और नहीं तूं और नहीं" । नवपद पूजा-२

सूर-सम्राट कविवरने भैरवीका प्रयोग अनेक स्तवन-पद-पूजादि विविध काव्योमे यथायोग्य रूपमे किया है-जैसे परमात्माके जन्म महोत्सवका वर्णन परिपूर्ण भक्तिभावसे भैरवीमे गाया है

"सुरपति सगरे जिनपति केरा, करे महोत्सव रंगे रे....
सब सुरवर मिलि, सुरगिरि आये, सोहमपति चित्त चंगे रे;
बहु परिवारे जन्म नगरमें, जिनपति नमत उमंगे रे..." स्नात्रपूजा-ढाल-४

कल्याण — सध्या समय गाया जानेवाला और शात प्रकृतिके कल्याण थाटके रागको आत्म-परितोष या मगलके लिए गानेकी परिपाटी है इसके अनेक भेद है—शुद्ध-श्याम-गोरख-यमन आदि-

"रावण अष्टापद गिरिंद, नाच्यो सब साजसंग । बांध्यो जिनपद उतंग, आतम हितकारी"...... स.भें.पू.१६

माढ राग—शुद्ध स्वरोसे गाया जानेवाला यह माढ राग विशेषत राजस्थान-पजाब आदि प्रान्तोमे गाया जाता है। इस रागसे प्रीति, विरहकी तडपन, वैराग्य रस आदिमे निखार आता है । यथा-

"प्रीत लागी रे जिणंद शुं प्रीत लागी.....
जैसे धेनु वन फिरे रे, मन बछरे के रे मांह ।
चरण कमल त्युं वीर के रे, छिनक ही विसरत नांहि ।"........आ.वि.स्त.पृ.६१

सुहा — इसका सीधा सम्बन्ध वैराग्यके साथ माना जाता है ।

"शामरे ना जा रे....
नव भव केरो नेह निवारी, छिनकमें ना छटका जा रे...
हुं जोगन भइ नेह सब जारी रे, अंग विभूति रमा जा रे. " आ.वि.स्त.पृ.९१

खमाज — लगता है यह सगीतज्ञ सुरीश्वरजीका प्रिय राग होगा । इसका उन्होने अनेक बार प्रयोग करके अपने आत्मीय भावोको सहलाया है-कभी वहलाया भी है । कई बार आत्मीय सुखकी याचनाये भी की है यह राग "(Light Music)"के योग्य है और शृगारसे शातरस निष्पन्न करानेका सामर्थ्य रखता है -

"मान मद मनसे परिहरता, करी न्हवण जगदीश
मनकी तपत मिटि सब मेरी, पदकज ध्यान हिये धरता,
आतम अनुभव रसमें भीनो, भवसमुद्र तरता. "सत्रहभेदी पूजा-ढाल-१

भोपाली—यह अत्यन्त सादा राग होने पर भी अति विशाल और अत्यन्त गभीर राग है । अधिकतर आग्रा घरानेकी गायकीमे इसका विशेष प्रयोग होता था । यह गभीर प्रकृतिका है और शामको

गाया जाता है । कविराजने इसे ताल दीपचंदीके साथ प्रस्तुत किया है श्रीमहावीरजीके स्तवनमे-

दीन दयाल करुणानिधि स्वामी, वर्धमान महावीर भलेरो ।

श्रमण सुहंकर दुःखहरनामी, आर्यपुत्र प्रमभूत दलेरो..."आ.वि.स्त.७८.

इसी भोपाली रागको "ताल-जलद एकतालमे" गानेसे गभीरतामे कैसे परिवर्तन आता है देखिये-

"नाचत सुर पठित छंद, मंगल गुन गारी....

सुर सुंदरी कर संकेत,पिक धुनी मील भ्रमरी देत;रमक छमक मधुरी तान,घुंघरु घुनिकारी...." आ.वि.स्त.पृ.६०

श्रीराग—यह अति भव्य राग है जो शामको गाया जाता है। इसकी बदिशमे ही ऐसी भव्यता है कि, श्रोताको आनदित और प्रसन्न बना देती है । परमात्माके गुण-रूपके वर्णन इसमे किये जाते है- जैसे - **"जिनवर पूजा शिवतरु कंद....**

आतम चिदघन सहज विलासी, पामी सत् चिद् पद महानंद....." अ.प्र.पू.-ढाल-३

मालकौशः— शातरस पोषक, गम्भीर प्रकृतिका यह राग मध्यरात्रिके समय गाया जाता है। कही कही पर कार्यक्रमके अतमे-बधाईके रूपमें-भी गाया जाता है। प्रमुखतया समवसरण-स्थित श्री अरिहत परमात्माकी देशना मालकौशमे ही प्रवाहित होती है।

"न्हवण करो जिनचंद, आनंद भर.....

आतम निर्मल सब अघ टारी, अरिहंत रूप अमंद......" अ.प्र.पू.-ढाल-१.

भैरवीके निकटके रागोमे सिंध-जगला-कसूरीजंगला-झिंझोटी-जोगिया आदि राग माने जाते है। भैरवी गाते हुए तीव्र-मध्यमको पलट लेनेसे 'रामकली'बन जाता है। ये सभी राग पंजाब-राजस्थान या उत्तरी भारतमे अधिकतासे गाये जाते हैं। 'रामकली' प्रायः प्रातःकालमें गाया जाता है।

"सर्व मंगलमें पहलो मंगल, जिनवर तंत्र सु गायो...."नव.पू.१०

इनके अतिरिक्त कालिंगड़ा, जयजयवती, धनाश्री, पीलू, बडहस, बिहाग, परज, बसत, सोरठ, वरवा, आदि रागोका भी मुक्त मनसे प्रयोग किया है । इन रागोंको आपने प्रमुखतया पजाबी ठेका, दीपचदी, कहरवा, दादरा, रूपक त्रिताल, जलदएकताल आदिके माध्यमसे पेश किया है ।

काव्योंकी रागोंके साथ गानेकी विभिन्न शैलियाँ होती है। एक शैलीमे एक राग अथवा एकसे अधिक राग भी गाये जा सकते है- जैसे ठुमरीमे पहाडी, खमाज, भैरवी, (जगला) आदि राग गाये जाते हैं । श्रीआत्मानदजी म सा ने अपने पद्योमे मराठी-लावणी, गुजराती-गरबा, मुस्लिमोकी-कव्वाली, पजाबी-ठुमरी, उर्दू-गजल, राजस्थानी-होरी-गुजरी आदि लोकसगीतके भी विविध प्रयोग किये हैं-यथा-*लावणी*— **एक-अनेक, सआदि-अनादि, अंतरहित जिनवर वानी ।**

निज आतम रूपे अज अमल, अखंडित सुख खानी...." श्रीनवपद पूजा-२

गरबा - **व्हाला भवि जइयो विमलगिरि भेटवा....**

अरे कांइ भेटिया भवदुःख जाय रे, अरे कांइ सेविया शिवसुख थाय रे....ह.लि.स्त. ५

ठुमरी - **चलो सजनी जिन वंदनको, मधुबनमें पाप निकंदनको ...**

समेत शिखर पर प्रभुजी बिराजे, दरसन पाप निकंदनको.... ह.लि.स्त. ५०

कव्वाली - **"दंपति जोडी अधिक प्यारा, सुंदर वपु अति कर शिंगारा ।**

अंतकाल भई छार....लगाया दिल नेमिके लार...." ह लि.स्त. २६

गजल - "सरण लेहि प्रभु थारी, अब में, मरण लेहि प्रभु थारी ...

तिमिर मिथ्यातके दूर करणको, थे जाणो सुखकारी ." ह.लि.स्त ७५

"सुखकी उपमा जगमें नहीं, तिण केवलज्ञानी शके न कही

जब सहज समाधिके रंग पगे, सिद्ध और नहीं तुं और नहीं ।" .. न.पू.२

होरी-बसत होरी-**"बंदे कछु करले कमाइ रे.....जाते नरभव सफल करा रे..बंदे कछु..श्रीनव.पू.-८**

गुजरी - "तैं तेरा रूप न पाया रे अज्ञानी....

माया प्रपंच ही जगतको मानी, फिर तिनमें ही भूलाया रे...." आ.वि.स्त. १०२.

इस प्रकार सम्राट सुरीश्वरजी श्री आत्मानंदजी म.साने सफल संगीतज्ञकी अदासे राग रागिनियोका सफल प्रयोग किया है । मानो तत्कालीन समाजको प्रेरणा दे रहे हो कि सगीत ऐसी विद्या है, जिससे इहलौकिक आनदोदधिकी लहरोका अनुभव होता है और पारलौकिक आत्मानदके विशाल-अगाध रत्नाकरकी शात-गभीर-स्थिर स्थितिकी चिरजीव प्राप्ति भी हो सकती है ।

निष्कर्ष:– साहित्यकी काव्यविधा बिन्दुमे सिन्धुको समाविष्ट करनेकी क्षमता रखती है । सिद्धकवि उमडते-घुमडते अकथ्य भाव वारिधिकोदो-चार शब्दोमे या दोपक्तियोमे ही समाहित कर देता है । कवीश्वर श्री आत्मानजी म.सा ने भी अपनी पद्य रचनाओमे आध्यात्मिक-सास्कृतिक-नैसर्गिक, दार्शनिक-सैद्धान्तिक-आगमिक, सगुण-निर्गुणादि ईश्वर प्रति सर्वस्व समर्पित दास्य या सख्य- भक्ति-भावकी स्थूलसे लेकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म, ऐसी जजबाती अनुभूतियोंको प्रस्तुत-अप्रस्तुत, अलकार और छद, प्रतीक और बिम्बादिके कसबसे सजाकर, विविध राग-रागिणियोंसे शृंगारित करते हुए अपने प्रातिभ काव्य-वैभवको लूटाकर स्व-परकी निजानद मस्तीकी आह्लादपूर्ण प्रसन्नताको प्रकट किया है ।